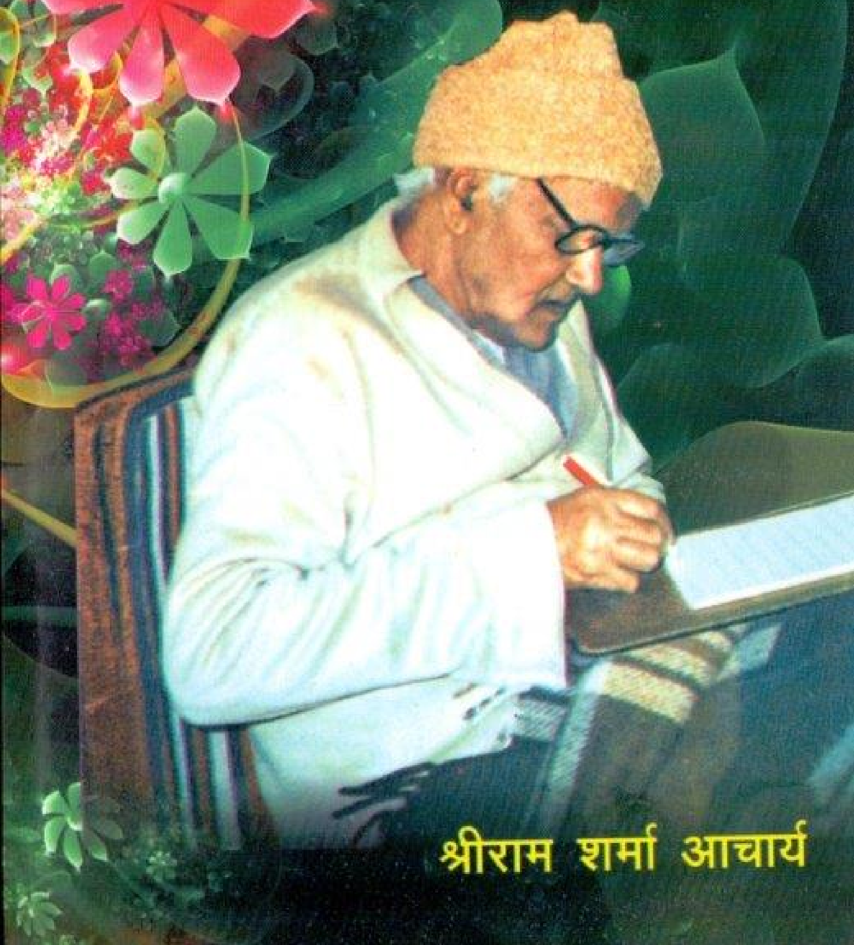
देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर

भाग- ३



श्रीराम शर्मा आचार्य



देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर

(बोध कथा एवं सत्य घटना संग्रह)

(तृतीय भाग)

卐

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : १५.०० रुपये

यह संकलन

'युग निर्माण योजना' में महापुरुषों के जीवन प्रसंगों, सत्य घटनाओं, लघु कहानियों, बोध कथाओं आदि को प्रकाशित करने की अविच्छिन्न परंपरा रही है । आकार में छोटे परंतु प्रेरक, मनोरंजक एवं रोचक होने के कारण सहज ही इन्हें पढ़ने की इच्छा होती ही है । कभी कभी ये प्रसंग मनुष्य के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन भी उपस्थित कर देते हैं, उसकी जीवन धारा को ही बदल देते हैं । यदि इतना न भी सही तो भी ये हमारे मन को छूकर उसे प्रकट-अप्रकट रूप से प्रभावित तो करते ही हैं । इनकी मर्मस्पर्शिता ही इनकी सबसे बड़ी विशेषता है । इनके बारे में निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर ।

एक बात और । प्रेरक प्रसंग प्रायः सभी वर्गों के पाठकों के लिए उपयोगी एवं रोचक होते हैं । बाल, युवा, वृद्ध, नर-नारी, छात्र-नेता-अभिनेता-व्यवसायी आदि सभी इन्हें पढ़ने में रुचि लेते हैं । जब भी समय मिला एक दो प्रसंग पढ़ लिया । प्रेरणा मिली तो चिंतन-मनन में डूब गए । अवसाद, विषाद, निराशा के क्षणों में तो ये परमौषधि का काम करते हैं ।

इन्हीं सब विशेषताओं के कारण 'युग निर्माण योजना' में प्रकाशित विभिन्न प्रसंगादि को संकलित कर हम कई भागों में इन्हें प्रकाशित कर रहे हैं । आशा है हमारा पाठक वर्ग इन लघु पुस्तिकाओं का अवश्य लाभ उठायेगा ।

-प्रकाशक

विषयानुक्रम



दुर्बुद्धि भस्मासुर इस तरह जल मरा

किसी समृद्धि अथवा सिद्धि को पा सकना उतना कठिन नहीं होता जितना कि उसका मद सँभाल सकना । सिद्धियों का मद सँभाल सकने की सामर्थ्य सात्विकी तथा परमार्थी पुरुषों में ही संभव होती है । स्वार्थी अथवा तामसी व्यक्ति में नहीं । इसका मुख्य हेतु यही होता है कि परमार्थी प्रवृत्ति के व्यक्ति जो कुछ करते हैं, ईश्वर के प्रति करते हैं और जो कुछ पाते हैं ईश्वर-अर्पण ही कर देते हैं । वे सामान्य जीवन साधनों के अतिरिक्त न तो अपने लिए कुछ चाहते हैं और नियति के अनुसार उन्हें जो कुछ फलस्वरूप मिलता है उसे वे अपना न समझ कर परमार्थ पथ में विसर्जित कर देते हैं । इसलिए सात्विकी व्यक्तियों की सिद्धियाँ और उपलब्धियाँ उनके लिए शुभ हो कर फलती हैं और स्वार्थी व्यक्ति को अशुभ बनाकर इसी नियम के अनुसार सत्पुरुषों के तप और उनकी सिद्धियाँ उनके तथा संसार के लिए हितकर हुई हैं और व्यक्तियों की तपश्चर्याएं स्वयं उनके लिए और संसार दोनों के लिए कष्ट तथा विनाश का कारण बनी हैं । इसलिए निर्देश है कि तप अथवा साधना सात्विक वृत्ति से करना चाहिए, असात्विक अथवा तामस वृत्ति से नहीं-जिससे कि सिद्धि की सदा में मदमत्तता का दोष न घेर ले और हित में अहित का समावेश हो जाये ।

भस्मासुर बड़ा शक्तिशाली असुर था । उसे प्रेरणा हुई कि वह तप कर के अपने को अजेय बना ले । उसने तप की योजना बनाई और हिमालय पर चला गया । भस्मासुर शरीर से भी शक्तिशाली था और मनोबली भी था । साधना की सिद्धि तक पहुँचने के लिए समर्थ भी था । किंतु उससे भूल यह हो गई कि उसने तप में संलग्न होने से पूर्व अपनी वृत्तियों का परिष्कार नहीं किया । विकारों को जीवित रहने दिया ।

अपरिष्कृत मनोभूमि को लेकर ही भस्मासुर भगवान् शंकर के तप पर बैठ गया और अपनी आसुरी शक्तियों को नियोजित कर बढ़ने लगा । सैकड़ों साल तक उसने अखंड तप किया और अंत में देवाधिदेव शंकर को प्रसन्न कर ही लिया । वे प्रकट हुए और स्वस्ति के साथ उसे तपपूर्ण होने की सूचना देते हुए वरदान माँगने को कहा । भस्मासुर उठा और अपनी सिद्धि के आनंद में मगन हो उठा और वरदान माँगा कि-''मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ वह तुरंत भस्म हो जाय ।'' असुर आखिर असुर ही तो था । आत्म-कल्याण, विश्व-कल्याण, आत्मानंद अथवा

लोकानंद माँग भी कैसे सकता था। उसकी अपरिष्कृत चित्त-वृत्तियों ने उसे छल ही लिया। उसका सैकड़ों साल का प्रचंड पुरुषार्थ व्यर्थ चला गया। भगवान् शंकर ने 'तथास्तु' कहा और उसमें मनोवांछित शक्ति आ गई।

शक्ति पाते ही भस्मासुर मदमत्त हो उठा और उसके तपोपालित विकारों ने उसे यहाँ तक गिरा दिया कि वह भगवती पार्वती को पाने के लिए अपने आराध्य शंकर भगवान् को ही भस्म कर देने के लिए हाथ उठा कर दौड़ पड़ा। दाता तो वरदान देकर वचनबद्ध हो ही चुका था। करता भी क्या ? शंकर भगवान् भागे और विश्वासघाती भिक्षुक उनके पीछे पड़ गया।

सत्पुरुष की सहायता सत्पुरुष ही तो करेगा। भगवान् विष्णु ने शंकर की आपत्ति देखी और वे सहायता के लिए दौड़ पड़े। उन्होंने समझ लिया कि विकारों से उद्धत असुर विकार द्वारा ही मारा जाएगा। उन्होंने तुरंत ही पार्वती का रूप रखकर उसका रास्ता रोक लिया और कहा-"यदि तुम इन्हीं की तरह ही इस प्रकार नृत्य करके मुझे प्रसन्न कर लो तो मैं शंकर को छोड़ कर तुमसे विवाह कर लूँगी"-और सिर पर हाथ रखकर नाट्य मुद्रा निर्देश किया। कामातुर भस्मासुर का विवेक नष्ट हो चुका था। प्रस्ताव में निहित रहस्य न समझ सका। वह तुरंत ही नृत्य करने को उद्यत हो गया। पर ज्यों ही उसने अपना हाथ, लास्य मुद्रा के लिए अपने शिर पर रखा त्यों ही वर के प्रभाव से भस्म होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार उसका विकारदूषित तप विनाश का कारण बना।

नहुष का मनोविकार उसके पतन का कारण बना

कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य जिन गुणों से बढ़ता है, उन्नति और विकास करता है उन्हीं गुणों को पद प्रतिष्ठित होकर त्याग देता है और विपरीत गतिविधि अपना लेता है। लोग समाज में पद-प्रतिष्ठा पाने के लिए परोपकार, परमार्थ और सत्कर्म करते हैं, जन-सेवा और जन-शिक्षा का कार्यक्रम अपनाते हैं और जब अपना लक्ष्य पा लेते हैं तो समाज पर स्वामित्व दिखाने लगते हैं।

आदमी जिन गुणों के आधार पर आगे बढ़े और ऊँचा उठे, यदि वह अपनी स्थिति बनाये रहना चाहता है, तो उनको यथावत धारण किये रहे, अन्यथा उसका पतन निश्चित है । संसार में इसी आधार पर उठने, गिरने वालों के एक नहीं हजारों उदाहरण मौजूद हैं ।

नहुष धरती का एक महान् राजा था । वह वीर था, साहसी था, न्यायी और नीतिवान था । अपने पुण्य और परमार्थ के आधार पर बड़ा प्रसिद्ध और सम्मानित था । वह न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था और न्यायपूर्वक ही दंड दिया करता था । उसने बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन और बड़े-बड़े पुण्य-उत्सवों का सामरोह किया था । दानी, दयालु और पुण्य-आत्मा होने से उसे पृथ्वी का इंद्र कहा जाता था । यही सही भी था ।

एक बार जब इंद्र को एक साधना करने के लिए अरण्यवास करना पड़ा और इंद्रासन खाली हो गया, तो त्रिलोक का शासन संभालने के लिए नहुष को ही उस पर प्रतिष्ठित किया गया । इंद्र-पद पाते ही नहुष मदमत्त हो उठा और सारी नैतिक मर्यादाओं को भूल गया । उसने एक बार इंद्र की पत्नी शची को देख लिया । उसकी रूप माधुरी से उसका मन मोहित हो गया । नहुष उत्तरदायी व्यक्ति था और एक महान् पद पर प्रतिष्ठित था । उसका कर्तव्य था कि वह अपनी विचलित होती हुई वृत्तियों को रोकता । किंतु प्रमादवश वह उसकी उपेक्षा कर गया । फल यह हुआ कि वह धीरे-धीरे विकार का शिकार बन गया और शची को पाने के लिए व्याकुल हो उठा ।

पहले तो उसने शची के पास प्रस्ताव भेजा किंतु जब वह तैयार न हुई तो सत्ता एवं पद का प्रयोग किया । कहलाया कि जब हम इंद्रासन के अधिकारी हैं तो इंद्राणी पर भी हमारा अधिकार है । यदि राजी से न मिली तो हम बलपूर्वक उसको प्राप्त करेंगे ।

शची ने समझ लिया कि नहुष विकारों के वश में हो गया है । यदि युक्तिपूर्वक उसका दमन न किया गया तो वह कोई विग्रह खड़ा कर देगा और तब स्वर्ग का कुशल-क्षेम संकट में पड़ जाएगा । वासना-ग्रस्त मनुष्य तो पागल होता है । निदान शची ने कहला भेजा कि यदि नहुष ऋषियों से जुती पालकी में मुझे लेने आये तो मैं उसके साथ जा सकती हूँ । विवेक-हीन हो जाने से नहुष को यह शर्त बड़ी सरल

लगी । वह उसमें छिपे हुए रहस्य को न समझ पाया । निदान उसने कुछ ऋषियों को एक पालकी में जोता और उस पर बैठकर शची के पास चल दिया ।

बेचारे क्षीणकाय ऋषि उस नहुष को जो इस समय पाप-वृत्तियों के कारण बहुत ही बोझिल हो रहा था, जल्दी-जल्दी लेकर कैसे चल पाते । पर नहुष को पल-पल पहाड़ हो रहा था । वह बार-बार सर्प-सर्प (जल्दी-जल्दी) कहकर ऋषियों को तेज चलने के लिए हाँक रहा था और इसी क्रम में उसने उनको लात से भी ठेला । बस ! अन्याय की पराकाष्ठा हो गई । ऋषियों ने पालकी ठसक कर उसे शाप दे दिया-"जा सर्प, सर्प के उतावले, जाकर सर्प हो जा ।" नहुष का तुरंत पतन हो गया और वह अपना स्वर्ग का राज-पद खोकर युग-युग तक सर्प योनि में अपने किए का भोग भोगता रहा ।

भूल देवताओं के लिए भी क्षम्य नहीं ।

आठों वसु एक बार सपत्नीक पृथ्वी-लोक पर भ्रमण के लिए उतरे । कई तीर्थ और देवताओं का दर्शन करते हुए वे वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे । वसिष्ठ का आश्रम उन दिनों तप, ज्ञान, साधना और ब्रह्मवर्चस्व के लिए विश्वविख्यात था । वहाँ अलौकिक शांति बिहर रही थी ।

वसु और उनकी पत्नियाँ देर तक आश्रम की प्रत्येक वस्तु को देखते रहे । आश्रम की यज्ञशाला, साधना-भवन और स्नातकों का निवास आदि सभी स्वच्छ, सजे हुए एवं सुव्यवस्थित देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । बड़ी देर तक वसुगण ऋषियों के तप, ज्ञान, दर्शन और उनकी जीवन व्यवस्था पर चर्चा करते और प्रसन्न होते रहे ।

इस बीच वसु प्रभास एवं उनकी धर्मपत्नी आश्रम के उद्यान भाग की ओर निकल आए । वहाँ ऋषि की कामधेनु नंदिनी हरित तृण चर रही थी । गौ की माँसल देह, भोली आकृति, धवल वर्ण प्रभास-पत्नी को यों मन भा गए कि वे उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठीं ।

उन्होंने प्रभास को संबोधित करते हुए कहा-"स्वामी ! नंदिनी की मृदुल दृष्टि

ने मुझे विमोहित किया है, मुझे इस गाय में आसक्ति हो गई है अतएव इसे अपने साथ ले चलिए ।"

प्रभास हँस कर बोले-"देवी ! औरों की प्यारी वस्तु देखकर लोभ और उसे अनाधिकार पाने की चेष्टा करना पाप है, उस पाप के फल से मनुष्य तो मनुष्य, हम देवता भी नहीं बच सकते । क्योंकि ब्रह्माजी ने कर्मों के अनुसार ही सृष्टि की रचना की है । हम अच्छे कर्मों से ही देवता हुए हैं, बुराई पर चलने के लिए विवश मत करो अन्यथा कर्म-भोग का दंड हमें भी भुगतना पड़ेगा ।"

"हम देवता हैं इसलिए पहले ही अमर हैं । नंदिनी का दूध तो अमरत्व के लिए है, इसलिए उससे अपना कोई प्रयोजन भी तो सिद्ध नहीं होता ?" प्रभास ने अपनी धर्मपत्नी को सब प्रकार समझाया ।

पर वे न मानीं । उन्होंने कहा-"ऐसा मैं अपने लिए तो कर नहीं रही । मृत्यु-लोक में मेरी एक सहेली है उसके लिए कर रही हूँ । ऋषि भी आश्रम में हैं नहीं इसलिए यथाशीघ्र गाय को यहाँ से ले चलिए ।"

प्रभास ने फिर समझाया-"देवि ! चोरी और छल से प्राप्त वस्तु को परोपकार में भी लगाने से पुण्य फल नहीं होता । अनीति से प्राप्त वस्तु के द्वारा किए हुए दान और धर्म से शांति भी नहीं मिलती । इसलिए तुमको यह जिद छोड़ देनी चाहिए ।"

वसु-पत्नी समझाने से भी न समझीं । प्रभास को गाय चुरानी ही पड़ी । थोड़ी देर में अन्यत्र गए हुए वसिष्ठ आश्रम लौटे । गाय को न पाकर उन्होंने सबसे पूछताछ की । किसी ने उसका अता-पता नहीं बताया । ऋषि ने ज्ञान-चक्षुओं से देखा तो उन्हें वसुओं की करतूत मालूम पड़ गई । देवताओं के इस उद्धत पतन पर शांत ऋषि को भी क्रोध आ गया । उन्होंने शाप दे दिया-"सभी वसु देव शरीर त्याग कर पृथ्वी में जन्म लें ।"

शाप व्यर्थ नहीं हो सकता था । देवगुरु के कहने पर उन्होंने सात वसुओं को तो तत्काल मुक्ति का वरदान दे दिया पर अंतिम वसु प्रभाष को दीर्घकाल तक मनुष्य शरीर में रहकर कष्टों को सहन करना ही पड़ा ।

यह आठों वसु क्रमशः महाराज शांतनु और गंगा के उदर से जन्मे । सात की तो तत्काल मृत्यु हुई पर आठवें प्रभास को भीष्म पितामह के रूप में जीवित रहना पड़ा । महाभारत युद्ध में उनका शरीर छेदा गया यह उसी पाप का फल था जो उन्होंने

देव शरीर में रहते समय किया था । इसलिए कहते हैं कि गलती देवताओं की भी क्षम्य नहीं । मनुष्य को तो उसका अनिवार्य फल भोगना ही पड़ता है । दुष्कर्म के लिए पश्चाताप करना ही पड़ता है ।

बड़ों की दुष्प्रवृत्तियाँ ही सामाजिक पतन का मूल कारण

सूरज अस्ताचल के पीछे छिपने जा रहा था । राह चलते ब्राह्मण-समाज का मूर्धन्य वर्ग अपने परिजनों की लंबी होती जा रही छाया को देखकर अनुभव कर रहा था कि उनकी चिंता भी इसी प्रकार बढ़ती जा रही है । कहीं दुष्ट और आसुरी प्रकृति के लोग उनका संहार करने के लिए पीछे-पीछे न आ रहे हों । वे रह-रह कर पीछे मुड़कर देख लेते थे । दूर तक कहीं किसी के आने का संकेत नहीं मिलता था । फिर भी चिंता तो थी ही । जिस प्रांत से वे लोग भागकर आ रहे थे उसमें दुष्ट प्रकृति के अवांछनीय व्यक्तियों ने ऐसा उत्पात मचा रखा था कि ब्राह्मणों का वहाँ रहना भी दूभर हो गया था और उन्हें अपनी प्राण रक्षा भी कठिन लगने लगी थी ।

प्राणरक्षा के लिए ही ब्राह्मणों का दल अपने परिवारों सहित महर्षि गौतम के आश्रम में आश्रय पाने के लिए निकल पड़ा था । स्त्रियाँ व्याकुल होकर जब पूछ उठतीं-''कितनी दूर है गौतम का आश्रम ।'' तो उनके साथ चल रहे पुरुष कह उठते-''कल मध्याह्न तक पहुँच जाएंगे ।''

समाज में अवांछनीयताएं इतनी बढ़ चुकी थीं कि प्राण रक्षा के लिए भागे ब्राह्मण और उनके परिवार की स्त्रियों को रात में रुकना भी खतरे से खाली नहीं लगा । पता नहीं वे लोग पीछे आ रहे हों और उनके रुकते ही उन तक पहुँच जाँय । सो वे रात को भी चलते रहे और अगले दिन मध्याह्न के समय ब्राह्मणों ने महर्षि गौतम के आश्रम में प्रवेश किया । विदित था कि महर्षि के आश्रम में सिंह और गौ-शिशु एक साथ रहते थे । वहाँ सभी दुष्ट प्रवृत्तियों का शमन हो जाता था । इसलिए सभी ब्राह्मण वहाँ पहुँच कर निश्चिंत और निर्भय हो गए । महर्षि गौतम से जब

उन्होंने सारी स्थिति स्पष्ट की तो महर्षि ने कहा-"प्रिय अतिथियो ! मैं सब तरह से तैयार हूँ । आप अपने अग्निहोत्र के साथ यहाँ निवास करें ।"

आश्रमवासी मध्याह्न कालीन विश्राम कर रहे थे । किंतु ब्राह्मणों का आगमन सुनकर सभी तत्पर हो गए तथा अभ्यागतों के आवास, भोजन और विश्राम की व्यवस्था में जुट गए । आतंकित ब्राह्मणों का भय तिरोहित हो गया और वे अपने अग्निहोत्र के साथ आश्रम में निवास करने लगे । नित्य प्रति के अग्निहोत्र के धुँए से आकाश में धूपछाही चादर तन जाती और सामगान से आकाश गूंज उठता था । पक्षियों का कलरव भी मानों उनका समवेत देता ।

समय बीतने लगा । ब्राह्मणों के प्रदेश से समाचार आते रहते थे । वहाँ दुष्ट और अवांछनीय तत्वों के उत्पात शांत होने लगे थे । इधर महर्षि गौतम द्वारा इतने ब्राह्मणों को प्रश्रय दिए जाने के कारण उनकी कीर्ति भी बढ़ रही थी । एक बार भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद महर्षि गौतम के आश्रम में आये । उन्होंने महर्षि की प्रशंसा करते हुए कहा-"ऋषिवर ! आपकी यह कीर्ति तो दिगदिगंत में गायी जा रही है । धन्य हैं आप जैसे परोपकारी और ब्रह्मनिष्ठ संत, जिनके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया ।"

नारद तो चले गए पर प्रश्रित ब्राह्मणों के मन में ईर्ष्याग्नि भड़क उठी । वे सोचने लगे कि गौतम का यश चारों ओर हमारे ही कारण फैल रहा है । फलतः एक दिन ब्राह्मण जाने की तैयारी करने लगे । परंतु जाने से पहिले उन्होंने एक षड़यंत्र रचा ।

सुबह का समय था । महर्षि गौतम अग्निहोत्र से जैसे ही उठे और अपनी पर्णकुटी की ओर जाने लगे तो उन्होंने देखा आश्रम के आँगन में एक दुबली पतली गाय पड़ी है । उन्होंने जैसे ही निकट जाकर देखा कि गाय जीवित है या मृत और परीक्षा करने के लिए उसकी पीठ पर अपने हाथ के दंड से हल्का सा प्रहार किया, तभी चारों ओर से ब्राह्मण निकल पड़े और उन्होंने शोर मचाया-"हाय ! हाय !! इस पुनीत ब्रह्मबेला में गौ हत्या । छोड़ो ! छोड़ो !! इस ढोंगी का आश्रम और प्रकट हो जाने दो संसार के सामने इसके पातक को ।"

ऋषि ने ध्यानस्थ होकर देखा तो पाया कि यह ब्राह्मणों द्वारा बनाया गया गाय का पुतला है जो उन्हें कलंकित करने के लिए रचा गया व्यूह था । महर्षि गौतम ने

गुरु गंभीर वाणी से कहा-"हे ब्राह्मणो ! मैं समझ गया कि आपके क्षेत्र में उत्पात क्यों बढ़े और फैले हैं । समाज के मूर्धन्य होकर भी आप लोगों के हृदय में इस प्रकार ईर्ष्या और कलुष भरा है तो आपके समाज में अशांति, अव्यवस्था और विग्रह क्यों नहीं आयेंगे ।"

तन ही नहीं मन भी निर्मल हो

महाभारत की लड़ाई के बाद पांडवों ने एक के बाद एक यज्ञ किए, किंतु स्वजन-हत्या के दोष से चेतना को रंचमात्र भी सांत्वना नहीं मिली । उल्टे राजभोग के प्रति ग्लानि की भावना और जोर पकड़ गयी । अंत में विदुर जी के आदेश को शिरोधार्य कर माँ कुंती के सहित द्रौपदी एवं पांचों पांडव तीर्थाटन को निकल पड़े ।

योजना के अनुसार पहला पड़ाव व्यास मुनि का आश्रम था । व्यास जी ने प्रेम से सबका स्वागत किया और मनः शांति के लिए कुछ दिन उन्हें अपने पास ही टिकाया । आगे की यात्रा के लिए जब पांडव व्यास मुनि से विदा लेने लगे तो महर्षि ने अपना तुंबा उठाकर युधिष्ठिर के हाथों में थमा दिया और कहा-"वत्स, तीर्थों में जब तुम स्नान करो तो अपने साथ इस तुंबे को भी एक-दो डुबकियाँ लगवा दिया करना, तुम्हारे साथ मेरा यह तुंबा भी निर्विकार हो जाएगा ।"

व्यासजी ने प्रेम से सेवा का अवसर दिया है, पांडवों को इस प्रसंग से बड़ी प्रसन्नता हुई । अनमोल धरोहर के रूप में उन्होंने उस तुंबे को सहेज कर रखा और पुण्यसलिलाओं में स्नान करते समय उसे भी स्नान कराया ।

जब पांडवगण वापस लौटे तो अंतिम पड़ाव व्यासाश्रम ही था । सबने व्यासजी के चरण स्पर्श किए । मुनिराज ने गद्‌गद् भाव से सारे परिवार को देखा और यात्रा का विवरण पूछा । कुछ विश्राम के बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने थैले में से वह तुंबा निकाला और व्यासजी के सामने रखकर कहा-"भगवन ! यह आपका तुंबा है । हमने इसे हर पवित्र नदी में स्नान कराया है । इसमें कहीं हमारी चूक नहीं हुई है ।" व्यासजी ने कनखियों से पांडवों को निहारा फिर भीम से कहा-"बेटे ! जरा इस तुंबे को फोड़कर तो लाओ । हम सब प्रसाद के रूप में उसे खाकर तीर्थों

का पुण्य-लाभ करेंगे ।" भीम ने उसके टुकड़े करके व्यासजी की आज्ञा से द्रौपदी को दे दिए । द्रौपदी ने एक-एक टुकड़ा सारे पांडवों को बाँटा और बाकी व्यासजी के सामने रख दिया । व्यास मुनि ने एक टुकड़ा उठाकर चखा और घृणा से उसे एक तरफ थूक दिया-"अरे रे ! यह तो वैसा ही कड़वा है जैसा पहले था । क्या तुम लोगों को भी यह कड़वा लगा ?" अर्जुन ने कहा-"महाराज ! तुंबा तो कड़वा ही होता है, वह मीठा कैसे लगेगा ?" महर्षि व्यास ने आँखें उठाकर कहा-"लेकिन वत्स, यह तो तीर्थ स्नान कर आया है, इसे तो मीठा हो जाना चाहिए । कड़वाहट अर्थात् विकार को मिटाने के लिए ही तो लोग तीर्थ यात्रा करते हैं ।" कुंती चुप न रह सकी, बोली-"प्रभो, क्या स्वभाव भी कभी बदल सकता है ? प्रकृति के नियम तो कभी भंग नहीं होते ।"

व्यास देव कुंती के शब्द सुनकर पुलकित हो गए-"नहीं देवि, प्रकृति के नियम तो सनातन हैं, वे कैसे बदल सकते हैं ? किंतु स्वभाव के ऊपर जो विकृतियाँ छा जाती हैं और उसे मलिन कर देती हैं, वे तो हटायी जा सकती हैं, किंतु उसके लिए तन के स्नान के बजाय मन के स्नान की ही मुख्य जरूरत है । मेरा तुंबा तो जैसा गया था, वैसा ही आया । तुम लोग भी जैसे गए वैसे ही आ गए हो, मन की ग्लानि में कोई फर्क आया है क्या ? युधिष्ठिर, तुमने देख लिया है न कि मन का भार न तो अपने से बाहर भागने से उतरता है और न दूसरों पर उसे छोड़ देने से । सोने सा निर्मल होने के लिए स्वयं ही आग में तपना होता है । इसलिए व्याकुलता छोड़ो । तुम्हारे भीतर जो सात्विक पश्चाताप जाग्रत है, उसकी अग्नि तुम्हारी चेतना को निर्मल करती जा रही है । थोड़े समय में स्वर्ण अपनी पुनीत आभा में निखर उठेगा । पश्चाताप अपने आप में महान तपस्या है ।

तीर्थ यात्रा के पीछे तन को नहीं मन को निर्मल करने का विधान होने के कारण ही उसे पूज्य माना गया है । यदि यह पुण्य विधान न रहे तो यह निष्प्राण, निष्प्रयोजन ही रहती है ।

शक्तिशाली पापी भी अंत में मारा ही जाता है

कौरव और पांडव दोनों ही महाभारत युद्ध की तैयारी कर रहे थे तब की बात है । दुर्योधन ने विचार किया क्यों न श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में कर लिया जाय ? यह विचार आते ही वह द्वारिका के लिए चल पड़ा । श्रीकृष्ण उस समय सो रहे थे । दुर्योधन अहंकार वश सिराहने बैठकर श्रीकृष्ण के जागने की प्रतीक्षा करने लगा ।

पांडवों ने श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेने के लिए अर्जुन को भेजा । अर्जुन भी उसी समय पहुँचे जब श्रीकृष्ण सो रहे थे किंतु अपनी श्रद्धा और भक्ति भावना वश वे सिराहने न बैठकर पाँवताने बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण के जागने की प्रतीक्षा करने लगे ।

श्रीकृष्ण जागे तो उनकी पहली दृष्टि अर्जुन पर पड़ी । कुशल क्षेम के बाद अभी वे अभिप्राय पूछने जा रहे थे कि दुर्योधन ने हस्तक्षेप किया और बताया कि सर्वप्रथम मैं आया हूँ और इस दृष्टि से मेरा अधिकार सर्वप्रथम है कि मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करूँ ।

श्रीकृष्ण असमंजस में पड़ गए । नीति वेत्ता तो वे थे ही साथ ही साहसी और चतुर भी कम नहीं थे । वे जानते थे दुर्योधन ने छलपूर्वक पांडवों को जुए में हराया, उन्हें वन जाने को विवश किया और अब वह अपनी मनमर्जी भी करना चाहता है । सच्चाई के साथ सच्चाई का वर्णन न किया जाय तो वह पाप हो सकता है, पर यदि कोई छल और कपट करता है तो नीति कहती है कि उसके साथ कूटनीति का बर्ताव बुरा नहीं । कृष्ण ने उसी चतुराई का साथ लेते हुए कहा-"भाई मैंने सर्वप्रथम अर्जुन को देखा है अर्जुन है भी आप से छोटा । छोटों को माँगने का अधिकार विज्ञजन सर्वप्रथम दिया करते हैं । इसलिए प्राथमिकता तो अर्जुन को ही दी जायेगी किंतु आप यहाँ पहले आने की बात कहते हैं इसलिए माँग आपकी भी पूर्ण की जायेगी ।"

"एक तरफ तो मैं हूँ किंतु मेरा प्रण है मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा । दूसरी तरफ मेरी विशाल चतुरंगिणी चमू है, बोलो अर्जुन तुम दोनों में से कौन सा भाग लोगे"-श्रीकृष्ण ने प्रश्न किया ? इस पर अर्जुन बोले-"भगवन् ! मैं तो आपको ही लूँगा,

 (देखन में छोटे लगें

भले ही आप युद्ध न करें केवल हमारे साथ बने रहें ।"

दुर्योधन मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ और अर्जुन की मूर्खता मान कर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ । श्रीकृष्ण की विशाल अपराजेय सेना पाकर वह फूला नहीं समाया । अब उसने बलराम को भी अपने पक्ष में लेने की सोची किंतु वे थे स्पष्टवादी । उन्होंने साफ कह दिया मैं अन्याय का पक्ष कदापि नहीं लूँगा, साथ ही वे अर्जुन से भी खीजे हुए थे सो उसकी ओर जाने से भी इन्कार कर दिया । दुर्योधन ने यह भी अपनी कूटनीतिक विजय मानी ।

संजय इतनी कथा सुना चुके तो दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र ने उनसे प्रश्न किया-"हे तत्वदर्शी महामात्य ! यह तो बताइये कि वास्तविक बुद्धिमत्ता इनमें किसकी रही अर्जुन की अथवा मेरे पुत्र दुर्योधन की ?" संजय बोले-"तात ! बुद्धिमान तो अर्जुन को ही कहा जाएगा क्योंकि उसे मालुम है कि नैतिक, आत्मिक और बौद्धिक दृष्टि से समर्थ एक व्यक्ति की ताकत लाखों व्यक्तियों से बढ़कर होती है । श्रीकृष्ण की नीति प्रज्ञता, न्याय प्रियता, बौद्धिक और आत्मिक क्षमता का मुकाबला-आज सारे राष्ट्र में कोई नहीं कर सकता । इसलिए निश्चित मानिए कि अर्जुन ने उन्हें लेकर चतुराई ही की और विजय भी उसी की होगी ।"

धृतराष्ट्र चुप हो गए, पर इतिहास चुप नहीं हुआ । वह बताता है कि विशाल सेना वाला अनीतिवादी दुर्योधन, ईश्वरीय समर्थन वाले अर्जुन जिसके पास श्रीकृष्ण भी शस्त्ररहित थे, से हारा ही नहीं महाभारत के युद्ध में बंधु-बांधवों सहित मारा भी गया ।

पुण्य-परमार्थ में पाप की अपेक्षा अधिक शक्ति होती है

पांडवों का अज्ञातवास का समय चल रहा था । वे एक गाँव में वेश बदल कर एक ब्राह्मण के घर रह रहे थे । माता कुंती को घर छोड़कर पांचों पांडव भिक्षाटन पर चले जाते थे । उसी समय वे उदर पोषण के लिए अन्न भी संचय कर लाते थे और अपने विषय में जनमत का भी पता लगाते रहते थे ।

एक दिन चार पांडव तो भिक्षाटन पर चले गए परंतु भीम घर पर ही रह गए ।

वे माता से बातें कर रहे थे । इतने में ही ब्राह्मण के परिवार से रोने की आवाज आई । भीम ने माता से पता लगाने को कहा ।

कुंती अंदर आई तो देखा ब्राह्मण का पूरा परिवार एक साथ बैठा रो रहा है । कुंती को देखकर सभी सहसा कुछ देर को चुप हो गए । ब्राह्मण ने कुंती का स्वागत करते हुए कहा-"आइये माता, इस समय आपने हम दुखियों को दर्शन देकर बड़ा आभार किया । अब तो हम सब तीसरे प्रहर तक के मेहमान हैं, सायं तक सब समाप्त हो जायेंगे । हम लोगों के न रहने के बाद भी आप अपने पुत्रों सहित इसी घर में रहें और इसे अपना ही समझें । बस कभी-कभी हम अभागों को याद अवश्य कर लिया करें ।"

कुंती ने देखा कि ब्राह्मण निश्चय ही किसी बड़ी विपत्ति में फँसा है । लेकिन उसने अपने विवेक को नष्ट नहीं होने दिया हे । यथायोग्य शिष्टाचार का निर्वाह किया है और पहले जैसा ही आत्मीयतापूर्ण उदार व्यवहार कर रहा है । निश्चय ही यह बड़ा धीर पुरुष है । नहीं तो आपत्ति के समय तो लोग विपत्ति से घबराकर अन्यथा व्यवहार करने लगते हैं । ईश्वर की सहायता ऐसे धीर पुरुषों को ही मिलती है ।

माता कुंती ने सान्त्वना देकर सबका दु:ख बाँट लिया और विलाप का कारण पूछा, ब्राह्मण ने अपनी दु:ख कथा इस प्रकार सुनाई-

"माता ! इस क्षेत्र में एक बड़े ही दुरंत दैत्य का आतंक छाया हुआ है । वह पहले प्रतिदिन जहाँ से जिसको चाहता है, खाने के लिए पकड़ ले जाता है, जिससे संपूर्ण क्षेत्र में घर-घर भय छाया रहता है । कोई भी अपने को किसी समय भी सुरक्षित नहीं समझता है । सामान्य जीवनक्रम के साथ सारी नित्य-क्रियायें भी स्थगित हो गई हैं । धर्म-कर्म रुक जाने से दैत्य की असुरता और भी प्रबल होती जाती है । निदान क्षेत्र की जनता ने एक पंचायत करके दैत्य से यह समझौता कर लिया कि वह बस्ती में न आया करे । प्रतिदिन क्रम से एक घर से एक आदमी और भोजन का सामान उसके पास स्वयं ही पहुँच जाया करेगा । तब से यही क्रम चला आ रहा है और आज हमारे घर की बारी है । हममें से किसी एक के मृत्यु मुख में जाने से दूसरे उसके वियोग में मर जायेंगे । इसलिए हम सबने एक साथ ही दैत्य के पास जाकर मरने का निश्चय कर लिया है ।"

माता कुंती ब्राह्मण का दु:ख सुनकर गंभीर ही नहीं उदास भी हो गई । उन्होंने

दो क्षण विचार किया और बोलीं-"आप लोग अब अधिक चिंता न करें । हम सब भी आप लोगों के दु:ख के भागीदार होंगे । ईश्वर हमारी सहायता करेगा । " सांत्वना देकर कुंती वापस आ गईं ।

कुंती ने सारी बात भीम को बतलाई और इच्छा व्यक्त की इस दु:ख में ब्राह्मण की सहायता की जाय । भीम बोले-"इसमें भी क्या कोई कठिनाई है ? भोजन लेकर आज दैत्य के पास मैं स्वयं चला जाऊँगा और उसका काम तमाम करके चला आऊँगा । बस सारा झंझट ही समाप्त हो जाएगा ।"

कुंती ने कहा-"दैत्य बड़ा प्रबल है । मैं तुम्हें अकेले नहीं जाने दूँगी ।" भीम हँसे और बोले-"पापी और प्रबल । माँ, आपकी यह शंका मेरे प्रति आपके मोह की ही अभिव्यक्ति है । पुण्य-परमार्थ में पाप की अपेक्षा हजारों गुनी शक्ति होती है ।" भीम भोजन सामग्री लेकर गए और शीघ्र ही उस नर-भक्षी को मार कर वापस आ गए । नि:संदेह अन्याय के विरुद्ध प्राणों की बाजी लगा देने वालों को परमात्मा अपनी शक्ति दे देता है ।

इस पंचभौतिक शरीर से आसक्ति क्यों ?

धीरे-धीरे विकसित होता हुआ मिथिला नरेश कुंभ की कन्या मल्ली का व्यक्तित्व चंद्रमा की कलाओं की तरह यौवन की पूर्णमासी पर अपनी संपूर्ण कलाओं से विकसित हो गया । उसका अनुपम शारीरिक सौंदर्य निकटवर्ती राजाओं के मन को उसे अपनी अर्धांगिनी बनाने के लिए लालायित करने लगा । वह असाधारण रूपवती ही नहीं परम विदुषी और महान कलाकार भी थी, सामान्य भौतिक विषयों से लेकर अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों की पंडिता ।

मल्ली विवाह की इच्छा नहीं रखती थी । वह अपनी दैहिक तथा आत्मिक विभूतियों का विनियोग लोक-हित में करके तत्कालीन समाज में फैली हुई मूढ़ मान्यताओं तथा भ्रांतियों को मिटाने और सद्ज्ञान का प्रचार करने का व्रत ले चुकी थी । किंतु रूप के लोभी राजगण तो उसके इस महान उद्देश्य से अनभिज्ञ ही थे ।

मिथिला नरेश के पास अपनी पुत्री का विवाह करने के आग्रह भरे संदेश ऐसे

सौंदर्य लौलुप राजाओं की ओर से आते रहते थे । उनका उत्तर वे कुछ नहीं देते थे क्योंकि उन्हें अपनी कन्या के निश्चय का ज्ञान था और वे उसे उचित भी मानते थे । अत: उन्होंने राजाओं के प्रस्ताव उस तक नहीं पहुँचाए ।

राजा लोगों को जब अपने पत्रों के उत्तर नहीं मिले तो वे बड़े क्रुद्ध हुए । किंतु उन्हें मिथिला नरेश कुंभ के सैन्य बल तथा शौर्य का ज्ञान था । अत: कोई अपने इस अपमान का बदला अकेला नहीं ले सकता था । अत: वे सब संगठित हो गए । यह कुंभ का दुर्भाग्य ही था कि वे अन्याय के पक्ष में संघबद्ध हो उस पर आक्रमण कर बैठे । कुंभ अपने पड़ोसी राजाओं की संगठित सैन्य शक्ति से वीरतापूर्वक लड़े और मारे गए । मिथिला पर उनका अधिकार हो गया ।

विजय पाने के उपरांत वे आपस में ही टकरा गए, क्योंकि अब तक तो वे कुंभ से अपने अपमान का बदला लेने के उद्देश्य से प्रेरित हो संगठित हुए थे किंतु अब उनमें से प्रत्येक मल्ली को पाना चाहता था । अत: उनकी आपस में ही ठन गयी । बड़े वाद-विवाद के पश्चात सब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका निर्णय मल्ली से ही कराया जाना उचित है । वह जिसे वरेगी वह उसका अधिकारी होगा ।

पंडिता मल्ली को अपने पिता की पराजय तथा पड़ोसी राजाओं द्वारा उसके स्वयंबर रचने के आग्रह का ज्ञान हुआ तो वह कुछ क्षणों के लिए तो उनकी मूर्खता पर हतप्रभ हो गयी । पर उसने तुरंत ही निश्चय कर लिया उसे क्या करना चाहिए । उसने उन सब विजयी राजाओं को निश्चित तिथि पर अपने प्रासाद में उपस्थित होने का निमंत्रण दे दिया ।

निश्चित तिथि व निश्चित समय पर वे सब राजा गण मल्ली के प्रासाद पर उपस्थित हुए । मल्ली का प्रासाद उसके मनोहर व्यक्तित्व की तरह ही सुंदर व सुषमित था । प्रासाद के सामने सुरम्य उद्यान था जहाँ भांति-भांति के पुष्प खिले थे । पशु-पक्षी कल्लोल-क्रीड़ाओं में निमग्न थे । प्रासाद के कक्ष उसकी कलाकृतियों तथा बहुमूल्य ग्रंथ रत्नों से भरे पड़े थे । प्रथम तो परिचारिकाओं ने उन राजाओं को दिखाया । तदनंतर वे उन्हें मल्ली के स्वागत कक्ष में ले आयीं ।

सभी ने देखा स्वागत कक्ष के मध्य में अभिवादन की मुद्रा में मल्लीखड़ी थी । सौंदर्य की आभा से उसका शरीर दीप्त था । अंग-अंग से रूपश्री झर रही थी । मुख-मंडल पर सौंदर्य के लावण्य के साथ ही साथ पांडित्य व आत्म-शक्ति का

प्रखर तेज भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। विजयी नरेशों की आँखें इस अप्रतिम सौंदर्य को देखकर चुंधिया गयीं। परिचारिकाओं ने मल्ली से सबका परिचय कराया। मल्ली पाषाण प्रतिमा की तरह एक ही मुद्रा में खड़ी अपलक उन्हीं को देख रही थी।

तभी एक अन्य मल्ली ने कक्ष में प्रवेश किया। वही रंग, वही रूप, वही मुख-मंडल, वही तेज-एक स्थिर एक गतिमान। राजा गण दो-दो मल्लियों को देखकर आश्चर्य करने लगे। तभी नवागंतुक रूपसी बोली-"आप जिसे देख रहे हैं वह मेरी प्रतिमा है, जिसे मैंने ही बनाया है। आप मेरे सौंदर्य पर मुग्ध हैं। मेरे साथ विवाह करने के सुख स्वप्नों ने आपकी नींद चुरा ली थी। आप उचित-अनुचित का ध्यान किए बिना मिथिला पर चढ़ आए थे और मेरे पिता तथा मिथिला के सहस्रों निरपराध सैनिकों के रक्त से होली खेलने में भी आप हिचकिचाए नहीं थे। उसी मल्ली का सच्चा स्वरूप भी देख लीजिए।"

यह कहते हुए उसने प्रतिमा का सिर उसके वक्ष से हटा दिया। प्रतिमा खोखली थी। उसमें कई दिनों का अन्न भरा हुआ था जो सड़ गया था और उससे भयंकर दुर्गंध उठ रही थी। यह गंदी विषैली वायु सारे कक्ष में भर गयी। उससे परित्राण पाने के लिए उन लोगों ने अपने नाक वस्त्रों से ढक लिए। तब मल्ली ने प्रतिमा का सिर यथा स्थान जमा दिया। दुर्गंध उसी में कैद होकर रह गयी। कक्ष की गंदी वायु जब बाहर निकली तो मल्ली ने उन्हें समझाते हुए कहा-"इस सुंदर प्रतिमा का सा ही मेरा यह पंच भौतिक शरीर है। अन्न इसका आहार है। इसके भीतर भी वही सड़ा हुआ अन्न मल-मूत्र व दुर्गंध के रूप में भरा पड़ा है। उसे पाने के लिए आप लोग इतने अधीर हो उठे। आप ही बताइए क्या यह उचित था।"

राजा लोग उस परम विदुषी के ये ज्ञान और युक्तियुक्त वचन सुनकर अपराधी की तरह सिर नीचा करके खड़े रह गए। पश्चाताप की रेखायें उनके चेहरों पर उभर आयीं। कुछ ही क्षणों पहले जो अपनी विजय पर फूले नहीं समा रहे थे वे ही अब अपनी पराजय के क्षोभ से धरती में गड़े जा रहे थे।

वे सभी उसके चरणों में झुककर बोले-"देवी! हमने बड़ा अपराध किया है। हम मोह-माया में अंधे हो गए थे। सत्य ही यह मनुष्य शरीर इसी प्रकार मांस, मज्जा, अस्थियों व मल-मूत्र का ढेर है। हम आज से आपको गुरु मानते हैं। हमें बताइए हम अपने पापों का प्रायश्चित कैसे करें व इस मनुष्य जन्म को सार्थक कैसे करें।"

"आपने जो भूल की और उससे समाज का जो अहित हुआ है, उसका प्रायश्चित आप अपनी दैहिक-आत्मिक सामर्थ्य का विकास भौतिक उपलब्धियों से करें, साथ-साथ लोगों को बताते रहें कि वे ऐसी भूल न करें। इस शरीर को ईश्वर की थाती समझकर और अपनी विभूतियों को लोक-मंगल के लिए अतिरिक्त अनुदान मानकर इनका विनियोग विश्व मानव की सेवा में करने से ही मनुष्य जन्म सार्थक हो सकता है।"

राजाओं को ज्ञान हो गया। वे अपना शेष जीवन इसी प्रकार व्यतीत करने का व्रत लेकर अपने-अपने राज्यों को चल पड़े। मल्ली ने उसी समय अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों का परित्याग कर दिया। अपना सिर मुँड़वा लिया और ज्ञान प्रसार के लिए चल पड़ी राजमहल छोड़कर, जन पथ पर। उसे जैन तीर्थंकरों के समान ही गौरव मिला।

निस्वार्थता स्वार्थांधों को भी प्रभावित करती है

काश्मीर के सुल्तान जैनुलाबुद्दीन का स्वास्थ्य खराब रहने लगा। उनके शरीर में एक फोड़ा निकल आया। कितने ही चिकित्सकों ने उसे देखा, इलाज किया पर लाभ बिल्कुल न हुआ। सुल्तान का कष्ट बढ़ता ही जा रहा था। अनेक उपचारों के बाद भी वह फोड़ा घटने और ठीक होने का नाम ही न लेता था।

असह्य पीड़ा से सुल्तान कराहता रहा। उसका विष सारे शरीर में फैलने लगा, अब किसी को उसके जीवन की आशा न रही। राज्य की हिंदू जनता पर अत्याचार करने वाला सुल्तान अब मृत्यु की तैयारी कर रहा था। एक दिन श्री बट्ट नामक कश्मीरी वैद्य ने सुल्तान के पास संदेशा भेजा-"सेवक को भी चिकित्सा करने का एक अवसर प्रदान कीजिए। मैं भी आपके राज्य का निवासी हूँ और आयुर्वेद का साधारण ज्ञान रखता हूँ।"

सुल्तान को अपने स्वस्थ होने की तनिक भी आशा न थी, फिर भी श्री बट्ट

को उसने बुलवाया । सोचा कभी-कभी जड़ी-बूटियों की साधारण सी दवाइयाँ चमत्कार दिखा जाती हैं । अतः श्री बट्ट को दिखाने में भी क्या हानि है । उन्हें सुल्तान के सम्मुख पेश किया गया । उन्होंने बड़ी बारीकी से उस फोड़े के कारणों को जानने का प्रयास किया, विभिन्न चिकित्सकों द्वारा किए गए इलाज का पता किया और अंत में बड़े विश्वास के साथ प्रयोग करने के लिए कई औषधियाँ दीं ।

एक सप्ताह के उपचार के पश्चात घाव से मवाद निकलना बंद हो गया । पीड़ा में भी कमी आ गई । इलाज निरंतर चलता रहा । लगभग एक महीने में वह फोड़ा ठीक हो गया । जो सुल्तान हर समय अशांत और दुखी रहता था अब सुख की नींद सोने लगा । शाही चिकित्सक श्री बट्ट से ईर्ष्या करने लगे पर सुल्तान उसके इस जादू से बहुत प्रभावित हुए । किसी को आशा भी न थी कि सुल्तान कभी राज दरबार में जा सकेगा । स्वस्थ होने पर वह दरबार में आया और उसने सर्वप्रथम अपने जीवन दाता वैद्य श्री बट्ट की मुक्त कंठ से प्रशंसा की । उस समय श्री बट्ट भी वहीं उपस्थित थे । दरबारियों के सम्मुख सुल्तान ने मुँह माँगा इनाम देने का आश्वासन दिया पर श्री बट्ट टस से मस न हुआ । उस गरीब ब्राह्मण को धन-संपदा के प्रति तनिक भी लगाव न था । अतः माँगता भी क्या ? दरबारियों को ही नहीं सुल्तान को भी उसकी त्याग वृत्ति पर आश्चर्य हुआ । उसने कभी ऐसा निःस्वार्थ तथा सेवा भावी व्यक्ति देखा न था ।

सुल्तान की बातें सुनकर श्री बट्ट के मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हुआ वह तो मौन होकर सुल्तान की सब बातें सुनते रहे । उन्होंने सोचा कहीं ऐसा न हो कि मेरे मौन रहने का दरबारियों द्वारा गलत अर्थ लगाया जाये अतः उन्होंने अपनी बात कहना उचित समझा । सुल्तान को संबोधित करते हुए कहा-"बादशाह ! मैं ब्राह्मण हूँ । मेरी आवश्यकताएं बहुत कम हैं । जीविकोपार्जन के लिए थोड़े धन की आवश्यकता पड़ती है । मुझे धन, स्वर्ण या अन्य किसी प्रकार की संपत्ति की आवश्यकता नहीं है ।"

सुल्तान को समझते देर न लगी कि श्री बट्ट कुछ और कहना चाहता है । संभवतः संकोचवश अपनी बात नहीं कह पा रहा है । अतः सुल्तान ने पुनः निवेदन किया-"आपने मुझे जीवन दान दिया है । मैं आपका ऋणी हूँ । अतः आपसे यही आग्रह है कि अपनी बात आप स्पष्ट रूप से कह दें ।"

"कश्मीर नरेश ! यदि आप मुझे पुरस्कृत करने पर ही तुले हैं तो मेरी कुछ बातें मान लीजिए यही आपके द्वारा सबसे बड़ा उपहार होगा ।"

"कहिए मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । आप विश्वास तो रखिए ।"

"आपकी नीतियों से असंतुष्ट होकर कितने ही हिंदू कश्मीर छोड़कर अन्यत्र चले गए हैं । अब तो आपके राज्य में हिंदुओं के केवल ११ परिवार ही निवास कर रहे हैं । मैं चाहता हूँ कि सभी हिंदुओं को वापस बुला लिए जाये और उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाये जैसा कि मुस्लिम जनता के साथ किया जाता है । हिंदुओं को अपने धर्म के अनुसार कर्म करने, वेश-भूषा पहनने तथा बच्चों को शिक्षा देने की सुविधा प्रदान कीजिए । आपके लिए तो राज्य के सभी नागरिक समान होने चाहिए ।"

श्री बट्ट की प्रत्येक बात स्वार्थ रहित थी । उसने अपने लिए बादशाह से कुछ नहीं माँगा । इसीलिए उसकी धर्म और जाति के प्रति निष्ठा को देखकर दरबारियों को भी आश्चर्य हुआ । सुल्तान पहले ही श्री बट्ट को आश्वासन दे चुका था अतः उसने सभी बातें मानकर हिंदू और मुसलमान दोनों के प्रति समभाव रखना शुरू कर दिया । अब वह हिंदू विद्वानों का भी आदर करने लगा था । उसने श्री बट्ट से 'गीत गोविंद' तथा 'योग वसिष्ठ' जैसे ग्रंथ भी सुने । अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की ।

सुल्तान के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का सारा श्रेय वैद्यराज श्री बट्ट को था । ऐसे प्रलोभन से रहित त्यागी व्यक्ति ही अपनी जाति और धर्म के लिए महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करते हैं । भला ऐसे व्यक्तियों पर कौन गर्व न करेगा ।

तो फिर आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?

पृथ्वीराज चौहान को सुंदरी संयोगिता क्या मिली, वह सब कुछ भुलाकर उसी में लिप्त हो गए । न राज्य प्रबंध सूझता था, न राज्य की रक्षा करने की ही सुध थी । उन्होंने अपने आपको, अपनी दुनियाँ को संयोगिता के विलास कक्ष तक ही समेट लिया ।

दीपक जलाया तो प्रकाश के लिए जाता है, किंतु गृहस्वामी की असावधानी

तथा अविवेक से वही घर को जलाकर राख भी कर सकता है । नारी का स्नेह पुरुष के जीवन में सरसता भर देता है । इस प्रकार प्रकृति ने जीवन पथ की अगणित कठिनाइयों को पार करने के लिए पुरुष तथा स्त्री को सहयोगी बनाकर भेजा है ताकि यह यात्रा दुरूह न हो जाय । यदि साथी को पाकर मंजिल ही भुला दी जाय, चलना ही छोड़ दिया जाय तो इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी ?

पृथ्वीराज ऐसी ही भूल-भुलैयों में फँसे थे । विलास का अखंड दौर चल रहा था । कब सूर्योदया होता है ? कब सूर्यास्त होता और पुनः रात्रि आ जाती इसका भान ही नहीं था । देखते-देखते आँखें थक जातीं पर नव परिणीता पत्नी के सौंदर्य से आँख नहीं हटती । स्पर्श सुख की प्यास ज्यों-ज्यों बुझाई जाती, त्यों-त्यों अतृप्ति भी बढ़ती जाती । मरुभूमि में पानी के लिए तरसते हरिण को दिखाई देने वाली मृगतृष्णा की तरह, अग्नि में घृत डालकर बुझा पाने की मिथ्या धारणा की तरह वह कभी पूरी नहीं होती ।

मोहम्मद गौरी फिर भारत पर चढ़कर आ रहा था । कन्नौज के राजा जयचंद ने उसे सहायता का वचन देकर निमंत्रित किया था । इसी कारण उसका यह साहस हो सका था । नहीं तो वह अपने ही बलबूते पर आक्रमण करने वाला न था । अनेक बार हारने तथा प्राणों के लाले पड़ जाने की बात वह भूला न था ।

पृथ्वीराज के परम मित्र, राज्य कवि चंद तथा मंत्री गुरुराम उन्हें आक्रमण की सूचना देने आए तो परिचारिका ने राजा की आज्ञा बता दी-"वे किसी से नहीं मिल सकते ।" अति आवश्यक कार्य बताकर राजा से पुछवाया पर उत्तर वही मिला । एक बार, दो बार नहीं पूरे तीन बार उन्हें निराश होना पड़ा ।

चौथी बार तो कवि चंद अड़ गए । अभी नहीं तो फिर राजा से कभी मिलना न हो सकेगा । उन्होंने अपना संदेश लिखकर भेजा-*"कग्गर अप्पहं राज कर, मुँह जप्पह इहं बत्त । गौरी रत्तौ तुअ धरनी तुअ गौरी रस रत्त ।"* (यह काम करने के लिए पूरा जीवन पड़ा है । गौरी तुम्हारी मातृभूमि को ताक रहा है और तुम स्त्री के रस में डूब रहे हो ।)

कवि चंद का संदेश पढ़कर भी पृथ्वीराज को चेत नहीं आया । उसने कहलाया-"कह दो कवि चंद ही लड़ लें ।" इस कथन में पृथ्वीराज का अहंकार ही नहीं संयोगिता के प्रति गहन आसक्ति भी बोल रही थी । संयोगिता ने अपने पति

की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा वह समझ न सकी कि वे अपने सखा राज कवि से मिलना क्यों नहीं चाहते । उसने पूछा-"क्या हुआ नाथ ?"

"कुछ नहीं गौरी ने हमारे देश पर आक्रमण किया है ।"

"तो फिर आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

पृथ्वीराज उसे देखता ही रह गया । जो सचाई वह अपने जीवन के पैंतीस वर्षों में नहीं जान पाया था उसे संयोगिता ने सहज रूप में बता दी थी । भोग की कोई सीमा नहीं । यह तो सुरसा की तरह मुँह फैलाता ही रहता है । तेज मदिरा की तरह चेतना पर छाकर विवेक को कुंठित कर देता है । उन्हें पश्चाताप होने लगा । विदेशी आक्रमणकारी मेरी मातृभूमि पर चढ़ा आ रहा है हमें पद दलित करने आ रहा है । मैं भी कितना मूर्ख हूँ कि नारी को इस रूप में देखता रहा जिसे वह कभी स्वीकार नहीं करती । संयोगिता के कथन ने एक क्षण में उसके उस रूप को उजागर कर दिया ।

पृथ्वीराज के लिए एक क्षण भी उस विलास कक्ष में रुकना कठिन हो गया । वह कर्तव्य पथ पर चल पड़े ।

मनोबल हो तो कुछ भी असंभव नहीं

दक्षिणी इटली के एक छोटे से गाँव में जन्मे, दुबले-पतले एवं आत्महीनता से ग्रसित व्यक्ति का नाम है-"एंग्लो सिसिलियानो" । ११ वर्ष की अवस्था में माँ अपने बेटे के स्वास्थ्य के प्रति चिंतित थी कि उसका पुत्र मनुष्य होते हुए भी आत्मबल को जान नहीं पा रहा, फलतः बीमार, रोगी सा जीवन बिता रहा है । एंग्लो उसी बीच स्वास्थ्य के कारण इतना परेशान हो गया कि माँ को उसकी समुचित चिकित्सा कराने ब्रुकली आना पड़ा, फिर भी वह आश्वस्त न हो सका । चिंता इस कदर बढ़ी कि अब तो मरना है । इस उछलने-कूदने वाली उम्र में १५ किलोग्राम का बालक घर की सीढ़ियाँ चढ़ने में समर्थता एवं विवशता अनुभव करने लगा । पीला-मुरझाया-सा, खिन्न, शिथिल अंग-प्रत्यंग एवं निष्प्राण दीखने वाला शरीर दिन पर दिन कमजोर होता जा रहा था ।

हालोविन में पढ़ते सपय एक दिन एक मित्र के धीरे से धक्का देते ही वह गिर पड़ा, जोरों से चोट लगी । बेचारा परेशान था, अपने स्वास्थ्य के कारण । सोचने

अन्य देश ही नहीं, उसकी उस अनुचित महत्वाकांक्षा से उसके अपने देश का भी जीवन शांत न रह सका था। उसे विश्व-विजय योग्य लश्कर चाहिए था। किसी घर में नवयुवक न छोड़े गए। उस बड़ी वाहिनी की रसद के लिए प्रजा को धन-धान्य से रिक्त कर दिया गया। कोई विरोध अथवा असंतोष खड़ा न हो इसलिए सिर पर आतंक की नंगी तलवार लटका दी गई। सेना बनाम देश के नागरिकों को उनके घर-बार से दूर सैकड़ों कोस विदेशी सीमाओं में डाल दिया गया। दिन-रात लड़ाई, रक्तपात, छल-कपट और अभियान प्रयाण। न कोई शांति और न कोई सकून। लाखों कटते, हजारों भूखों मरते और न जाने कितने रोगी हो जाते। किंतु कोई सुनने वाला नहीं। लोग त्रस्त, क्लांत तथा असंतुष्ट थे। किंतु तब तक शक्ति-मंत की भुजा में बल, वाणी में तेज और विस्तार पर नियंत्रण था। समय पूरा न हुआ था।

किंतु आज जबकि सिकंदर रोग से विवश तथा असहाय हो गया कौन कह सकता है कि उसके अपनों के हृदयों में वे सब त्रास और कष्ट न कसक उठे हों जो उनमें बलात् इसलिए उठवाये कि सिकंदर अपने जिगीषु दंभ को तुष्ट करना चाहता था, जिसका कोई लाभ, कोई श्रेय उनमें से किसी को न होना था। बहुत संभव था कि हकीमों और सरदारों के असहयोग के पीछे यह भाव काम कर रहा था कि यह एक मौत के आँचल बँधे और हम सब को सुख-चैन की सांस लेना नसीब हो। क्या उनमें से बहुतों को यह याद न आया होगा कि कब-कब सिकंदर ने कहाँ, कारण और अकारण ही उन्हें दलित, तिरस्कृत अथवा ताड़ित किया है। क्या उस समुदाय में ऐसे लोग न होंगे जिन्हें यूनान के उन लाखों घरों की याद आती हो जहाँ उस समय पुत्र और पति के वियोग में माताएं और पत्नियाँ आँसू बहा रही होंगी और उन पिताओं की जो पुत्र के हाथ में हल और पतवार सौंपकर निश्चिंत हो चुके थे किंतु उन्हें फिर वह भार इसलिए लेना पड़ा होगा कि उनके कर्णधारों को सिकंदर ने विदेशों के मोर्चों पर कटवा डाला है। शक्ति-मंत, सिकंदर इस समय विवश और असहाय था, सबके मन और विचारकोण बदल चुके थे और पहले जहाँ लोगों को उसके गुण ही गुण दिखलाई देते थे, अब दोष ही दोष दृष्टिगोचर होने लगे।

यदि सिकंदर ने अपनी शक्ति जनहित और संसार में सुख-शांति की वृद्धि में लगाई होती तो उसकी सहायता की जोखिम से लोग डरते नहीं बल्कि अपने प्राण देकर भी बचाने का प्रयत्न करते। राज-पद और उस पर भी अनीति तथा आतंक से

दूषित राज-पद ऐसा ही प्रताड़णापूर्ण होता है कि लोग न तो उस पर स्वयं विश्वास करते हैं और न यही विश्वास रखते हैं कि वह उन पर विश्वास कर रहा होगा । सिकंदर संसार से जा रहा था और उसके पार्श्ववर्ती उसकी सहायता से मुँह चुरा रहे थे ।

फिर भी जहाँ प्रतिशोधी, स्वार्थी तथा अवसरवादियों की कमी नहीं होती । वहाँ विशुद्ध मनुष्य भी होते हैं, जो आपत्ति तथा पीड़ा में देखकर शत्रु का भी अपकार भूल जाते हैं और मनुष्यता के नाते उसकी सहायता में तत्पर हो जाते हैं । सिकंदर के एक फिलिप नाम के सेवक से उसकी पीड़ा न देखी गई । वह बड़ा विश्वासी व्यक्ति था और उसे यह भी विश्वास था कि सिकंदर उस पर विश्वास रखता है । वह पीड़ा से तड़पते सिकंदर के पास आया और बोला-"स्वामी ! आप धीरज रखिये । मैं अभी आपके लिए दवा तैयार करके लाता हूँ, आप शीघ्र ही अच्छे हो जाएंगे ।" फिलिप दवा बनाने चाला गया ।

अनेक लोग फिलिप के पास पहुँचे और उसे समझाते हुए बोले-"फिलिप, क्या मूर्खता करने जा रहे हो । सिकंदर अब किसी प्रकार बच नहीं सकता । यदि वह तुम्हारी दवा पीने के बाद मर गया तो लोग यही समझेंगे कि तुमने उसे विष देकर मार डाला है । इसलिए तुम उसे दवा देने की गलती न करो, नहीं तो तुम्हारी जान संकट में पड़ जायेगी ।"

फिलिप दवा बनाता हुआ साधारण वाणी में बोला-"मेरी आत्मा शुद्ध है, मैं उनके लिए अच्छी से अच्छी दवा तैयार कर रहा हूँ । मुझे पूरा विश्वास है कि वे मेरी दवा से शीघ्र ही अच्छे हो जायेंगे और यदि वे परमात्मा की इच्छा से मेरी दवा पीकर भी न रहे और मुझे उन्हें मार डालने की शंका में प्राण-दंड भी दे दिया गया तो भी मुझे कोई असंतोष न होगा । मेरी आत्मा की पवित्रता मुझे स्वर्ग ले जायेगी और फिर बहुत से मनुष्य मनुष्य की जान बचाने में, किसी का उपकार करने में स्पष्ट मौत आलिंगन कर लेते हैं, तो क्या मैं इस विश्वास के साथ उनकी मदद नहीं कर सकता कि वे अवश्य बच जायेंगे, अप्रत्याशित मृत्यु के भय से मैं मानवीय कर्तव्य से क्यों विमुख हो जाऊँ ?"

फिलिप के पास अनेक अपरिचित ऐसे भी आए जिन्होंने उसके जुल्म, शोषण तथा अत्याचार का चित्र दिखाते हुए उसे मनुष्यों का शत्रु और उसका दासकर्ता सिद्ध करने का प्रयत्न किया । किंतु फिलिप पर इसका भी कोई प्रभाव न

पड़ा और वह यह कहकर दवा बनाता रहा कि सिकंदर इस समय केवल एक पीड़ित तथा असहाय मनुष्य है, न वह राजा है, न जालिम और न मुझको गुलाम बनाने वाला आततायी ।

जिस समय फिलिप दवा बना रहा था उस समय सिकंदर के पास अधिकारी का पत्र आया । सिकंदर ने जैसे-तैसे पत्र खोलकर पढ़ा । उसमें लिखा था-"आप फिलिप से सावधान रहें । फारस के राजा ने आपको विष दिलाकर मार डालने का षड़यंत्र किया है । इस कार्य के लिए उसने अपार धनराशि और अपनी बेटी का विवाह कर देने का लालच देकर फिलिप को नियुक्त किया है ।"

सिकंदर ने पत्र पढ़कर अपनी तकिया के नीचे रख लिया । फिलिप दवा लेकर आया । सिकंदर ने एक हाथ से प्याला लिया और दूसरे हाथ से वह पत्र निकाल कर फिलिप को दे दिया । उधर फिलिप ने पत्र पढ़ना शुरू किया और इधर सिकंदर ने प्रेमपूर्वक दवा पीना शुरू किया । फिलिप ने जब उस पत्र से आँखें उठा कर कातर दृष्टि से सिकंदर की ओर देखा तब वह प्याला खाली कर चुका था । दवा ने तीव्र प्रभाव किया, सिकंदर अचेत हो गया । सरदारों ने मृत्यु दृष्टि से फिलिप की ओर देखा और फिलिप आत्मा की सच्चाई पकड़े साहसपूर्वक खड़ा रहा । कुछ देर बाद सिकंदर सचेत हुआ और उठ कर बैठ गया । उसकी सारी पीड़ा जा चुकी थी, वह बिल्कुल ठीक हो गया था ।

उसने उठकर फिलिप को गले लगाया और धन्यवाद दिया । किंतु फिलिप आँसुओं से उसे तर करता हुआ बोला-"स्वामी ! ऐसा पत्र पाकर भी आपने मुझ पर विश्वास कैसे कर लिया ।" सिकंदर मुस्कराता हुआ बोला-"प्यारे फिलिप ! मुझे आदमियों की बहुत कुछ पहचान है । मुझे पूरा विश्वास था कि तुम्हारा जैसा सज्जन व्यक्ति कभी विश्वासघात नहीं कर सकता । और फिर यदि तुम वैसा करते भी तो मैंने संशयपूर्ण निकृष्ट मृत्यु मरने की अपेक्षा विश्वासपूर्ण मृत्यु मरना अच्छा समझा ।"

सिकंदर ने फिलिप को बहुत सा पुरस्कार देना चाहा किंतु फिलिप ने उसे न लेते हुए कहा-"ऐसे अवसर पर आपने मुझ पर विश्वास करने की महानता तथा आदर दिया है, वही ही बहुत है मेरे स्वामी !"

निर्धनता में पल भी धन के प्रति आकर्षण नहीं

बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान पं० ईश्वरचंद्र विद्यासागर का शैशव से लेकर विद्यार्थी काल तक बहुत निर्धनता में बीता । उनके पिता इतने निर्धन थे कि पुत्र को एक कक्षा तक भी नहीं पढ़ा सकते थे । विद्यासागर को पढ़ने की बड़ी चाह थी । उन्होंने अपने व्यक्तिगत अध्यवसाय के बल पर इतनी विद्या प्राप्त कर ली कि तात्कालिक विद्वानों ने उन्हें विद्यासागर की उपाधि दी ।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में जब उन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि से विभूषित किया गया, उसी समय फोर्ट विलियम कालेज में प्रधान पंडित का पद रिक्त हुआ । प्रिंसिपल तथा अन्य अध्यापकों ने उन्हें अनुरोधपूर्वक उस पद पर नियुक्त कर दिया । अपनी नियुक्ति से पूर्व विद्यासागर ने नौकरी करने से इन्कार करते हुए कहा-"मेरा विचार कर्मचारी बनने का नहीं है । मैं स्वतंत्र रहकर समाज की सेवा करना चाहता हूँ ।"

कालेज के प्रधान पंडित का सम्मानपूर्ण पद का त्याग करते देखकर उनके अनेक मित्रों ने समझाया-"विद्यासागर ! इस अवसर को खोना ठीक न होगा । जीवन में अवसर बार-बार नहीं आते । आपने अपार कष्ट उठा कर विद्या प्राप्त की है, अब उसके द्वारा होने वाले लाभ से विमुख होकर आप से आप जीवन को अभावपूर्ण बनाये रहना बुद्धिमानी नहीं है । समाज-सेवा और लोक-सेवा के लिए संसार में हजारों सुविधा सम्पन्न लोग पड़े हैं । समाज ने आपको क्या दे दिया था, क्या सहायता की जो आप उसकी कृतज्ञता का पालन करने के लिए सेवा करने को उद्यत हैं और प्रधान पंडित का अच्छा-खासा पद छोड़ रहे हैं ?"

पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने अपने मित्रों की बात को ध्यान से सुना और कहा-"आप लोग ठीक कहते हैं कि अवसर बार-बार नहीं आते । मुझे उसका उपयोग करना चाहिए । यह मनुष्य जीवन संसार के सारे अवसरों से विरल एवं बहुमूल्य है । इसका सदुपयोग एकमात्र जन-सेवा के पुण्यपूर्ण कार्य करने से हो सकता है । कमाने को मैं पैसा भी कमाऊँगा और प्रयत्न करूँगा कि इस प्रकार अभाव की स्थिति न रहे, फिर भी मैं केवल अपने जीवन को सुख-सुविधा देने के लिए ही धन कमाना नहीं चाहता । जहाँ तक समाज सेवा तथा लोक-सेवा के लिए

हजारों आदमी होने का प्रश्न है, उसके लिए निवेदन है कि इस प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने तथा दूसरों के विषय में विचार बना सकता है । ऐसी दशा में समाज सेवा की ओर कोई भी न बढ़ेगा और समाज यों ही अज्ञान, अविद्या तथा कुरीतियों एवं अंधविश्वासों की चक्की में पिसता रहेगा । समाज ने मेरे साथ कोई उपकार नहीं किया इसलिए मैं भी क्यों उसका कोई हित करूँ, इस प्रकार के विचारों तथा भावनाओं में मेरा विश्वास नहीं है । हम आज जो कुछ दिखाई दे रहे हैं । वह सब समाज की सहायता से ही संभव हो सकता है ।।

एक साधारण सी शिक्षा संस्था स्थापित कर विद्या प्रचार का विचार रखने वाले पं० ईश्वरचंद्र विद्यासागर को बुला कर प्रिंसिपल ने कहा-"पंडितजी ! मैं आपके विचारों का सम्मान करता हूँ और मानता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज की कुछ न कुछ सेवा करनी चाहिए किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कोई नौकरी कर लेने पर समाज की सेवा हो ही नहीं सकती । आप वेतन के रूप में जीविका संबंधी चिंता से मुक्त रहकर समाज की जो भी सेवा करना चाहेंगे वह अधिक निःस्वार्थ भाव से कर सकेंगे । मुझे आपके विचारों का पता है और मैं अवश्य ही आप जैसे महानुभावों से अपने कालेज को गौरवान्वित करना चाहता हूँ ।"

प्रिंसिपल की बात सुनकर पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने नौकरी न करने का हठ छोड़ दिया । उन्होंने प्रधान पंडित का पद स्वीकार कर लिया और उसी के माध्यम से लोक हित के ऐसे ऐसे कार्य किये हैं कि जिससे वह आज बंगाल के ही नहीं संपूर्ण भारत का श्रद्धा भाजन बने हुए हैं ।

मृत्यु भी जिससे हार मान गई

२ फरवरी १९६८ को दस बजे आर्कटिक वृत के भीतर बसे गाँव में राजकीय निरीक्षकों के एक दल को वहीं छोड़कर रॉबर्ट बॉब गाउची ने अपने निवास फोर्टस्मिथ के लिए अपने एक इंजिन के बिवर वायुयान से उड़ान भरी । जब वह वहाँ से चला था तो तापमान शून्य से साठ अंश नीचे था । उसने उड़ान भरने से पहले अपने जमे हुए इंजिन को गर्म कर लिया । उसे आशा थी कि वह यलोनाइफ,

जो कि यहाँ से ५२५ मील दक्षिण में है, साढ़े तीन बजे तक पहुँच जाएगा और दूसरे दिन अपने घर पहुँच जाएगा पर उसे क्या पता था कि उसकी यह उड़ान महीनों तक पूरी नहीं हो सकेगी । वह पूरे दिन तक जीवन मृत्यु के बीच अधर में झूलता रहकर मानवीय साहस और अदम्य जिजीविषा की ऐसी कहानी की रचना कर जाएगा जिस पर सहज ही विश्वास नहीं किया जा सकेगा ।

रॉबर्ट गाउची ३९ वर्षीय विमान चालक था, जो अपनी पत्नी फ्रांसिस और तीन पुत्रियों के साथ कनाडा के उत्तरी-पश्चिमी सीमांत पर बसे फोर्टस्मिथ नामक कस्बे में रहता था । दस वर्ष में उसने ६००० से भी अधिक घंटों की कठिनतम उड़ानें भरी थीं । उसका अपना छोटा सा विमान इस भयंकर शीत और तूफानों से भरे इस विस्तृत वीरान भू-भाग में किसी भी स्थान की उड़ान के लिए शिकारियों, अन्वेषकों या साहसिक यात्रियों के लिए सदा तैयार रहता था ।

आज वह जब सरकारी निरीक्षकों की टोली को अपने गंतव्य पर पहुँचा कर लौट रहा था तो दोपहर के बाद ही उसका वायुयान तूफान में फँस गया । जब उसने देखा कि उसके वायुयान के निर्देशक उपकरण उसकी सहायता करने में असमर्थ हैं तो वह २०० फीट नीचे उतर आया । उसे ऐसे वृक्ष रहित समतल मैदान की खोज थी जहाँ वह रुककर तूफान थमने की प्रतीक्षा कर सके । उसने एक नजर नीचे फैली हुई विस्तृत हिमावृत्त धरती की ओर डाली । उपयुक्त स्थल देखकर उसने अपना यान नीचे उतार लिया ।

शीत बड़ी भयंकर थी । उसने पैरों में सील मछली की चमड़ी से बने जूते पहने हुए थे । उनके भीतर मोटे-मोटे चार जोड़ी मोजे पहने थे, शरीर पर कमीज के ऊपर दो स्वेटर और उसके ऊपर फर का कोट पहन रखा था । किंतु वह शीत के मारे काँप रहा था । उसने सोने के लिए प्रयुक्त होने वाले गर्म थैले के ऊपर तीन वैसे गर्म थैले और रख लिए तब भी वह सारी रात बुरी तरह से काँपता रहा ।

दूसरे दिन सबेरे जब उसने अपने इंजिन को पुनः गर्म करके दक्षिण की ओर उड़ान भरी तो उसका दिशा सूचक यंत्र खराब हो गया । मौसम भी क्षण-क्षण में खराब होता जा रहा था । हवा में बर्फ के कण उड़ने लगे थे और कोहरे ने धरती और क्षितिज को ढक लिया था । ऐसी स्थिति में उसने अपने रेडियो यंत्र द्वारा मार्गदर्शन व सहायता के लिए संबंध स्थापित करने का प्रयास किया पर उधर से कोई उत्तर नहीं

मिल रहा था । बड़ी देर के बाद कनाडियन एयर फोर्स के यलोनायक केंद्र से क्षीण सी सूचना मिली-"हाँ, हमें पता चल गया है । हम सहायता का प्रयास कर रहे हैं ।" कुछ ही घंटों में यह तुम तक पहुँच जाएगी । इस आवाज के बाद उसे अट्ठावन दिनों में अन्य कोई मानवी आवाज सुनने को नहीं मिली ।

जल्दी ही उसे एक झील के किनारे यान उतारने का उपयुक्त स्थान मिल गया । उसने वहाँ यान उतार कर 'सराह' और सी० पी० आई० से बेतार संबंध स्थापित करना चाहा पर उसे कोई सफलता नहीं मिल सकी । वहाँ तो हवा की सनसनाहट के अतिरिक्त कुछ सुनाई ही नहीं दे रहा था । इन दोनों इमरजेंसी स्टेशनों तक उसकी बेतार पुकार पहुँच नहीं रही थी । उसने अपनी ओर से संदेश भेजने के लिए जितनी तिकड़में वह लगा सकता था, लगायीं पर वह सफल नहीं हो सका । उसने अधिकतम फ्रीक्वेंसी पर संदेश संप्रेषण का प्रयास किया पर व्यर्थ । उसके स्विच बोर्ड पर जितने भी बेतार के साधन थे सभी बेकार सिद्ध हुए ।

अब उसने अपनी खाद्य सामग्री को टटोला । उसके पास सूखे भोजन के कुछ पैकेट, थोड़े से चाकलेट, एक पौंड के करीब शक्कर थी । बड़ी सावधानी से काम में लाने पर भी यह खाद्य सामग्री दस या बारह दिन ही चल सकती थी । यों वह अपनी पत्नी के लिए अस्सी पौंड मछली लाया था आर्कटिक वृत से, पर वह तो कच्ची थी फिर जमकर पत्थर बन चुकी थी । इसके अतिरिक्त उसके पास एक राइफल, माचिस के पाँच पुड़े, एक कुल्हाड़ी और चमक उत्पन्न करने वाले थोड़े से गोले थे ।

उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि 'सी० पी० आई०' और 'सराह' जैसे इमरजेंसी रेडियो केन्द्रों तक उसकी बेतार की पुकार नहीं पहुँच सकी है । पर निराश होने से क्या बनता ? वह फिर सो गया ।

दूसरे दिन भी तापमान शून्य से ५४ अंश नीचे था । वह सोच रहा था कि ऊपर से उड़ने वाले वायुयान उसे देख सकते हैं पर उसके इस सोचने का कोई अर्थ नहीं था क्योंकि वह स्थान वायुमार्ग पर तो था नहीं । उसने बचे हुए पेट्रोल से एक बार पुनः बैट्री को गर्म करके बेतार से संबंध बनाने की कोशिश की पर कुछ न हो सका । ऐसी भयंकर शीत में भी वह बाहर निकला और एक पेड़ की लंबी सी टहनी काटकर लाया उससे एरियल को बाँधकर ऊँचा किया । किंतु फिर भी वह जो संदेश भेजा उन्हें कोई स्टेशन पकड़ने में असमर्थ रहा । इसके बाद दो दिन तक उसने रहे-

सहे पेट्रोल से बैट्री गर्म करके संदेश भेजे पर उनका भी कुछ परिणाम नहीं हुआ। उसने झील के बर्फ पर १५० फीट बड़े-बड़े एस० ओ० साइन(सेव-अवर-सोल, हमारी रक्षा करो) बनाए पर वे तो आध घंटे में ही मिट गए।

इधर वायु सेना ने उसकी खोज का अथक प्रयास किया। उसी दिन एक दो इंजिन का एलबाट्रोस, दूसरे दिन एक ओर एलबाट्रोस और एक डी० सी० ३ भेजा गया। कुछ निजी यानों ने भी उनकी सहायता की। बारह दिन तक वायु सेना ने खोज जारी रखी। तापमान वही शून्य से साठ अंश नीचे था। पन्द्रह दिन तक वायुसेना के यानों ने २९२,००० मील की उडानें भरीं। सोलहवें दिन यह सोचकर खोज बन्द कर दी कि इतनी शीत में कोई आदमी इतने दिन जीवित नहीं रह सकता।

राबर्ट बॉब गाउची की पत्नी को फिर भी आशा थी उसने निजी वायुयानों द्वारा कुछ दिनों तक और खोज जारी रखाई। उस क्षेत्र के लोगों ने भी इस खोज में हर प्रकार की सहायता दी पर छब्बीसवें दिन उनकी खोज भी बन्द कर दी गई। गाउची की ईश्वर विश्वासी पत्नी अभी भी ईश्वर की सहायता का विश्वास संजोये अपने पति के लौटने के बारे में क्षीण सी आशा रखती थी।

राबर्ट बॉब गाउची के बाँये पाँव की तीन उँगलियाँ और दाहिने पाँव की दो उँगलियाँ बेकार हो चली थीं। उनमें गेंगरिन होने का भय था। यदि ऐसा हो गया तो उसका प्राणान्त निश्चित था। अतः वह उनका नित्य निरीक्षण किया करता था। वह इसके प्रति सचेत था कि यदि रक्त में जहर फैलने का जरा सा भी खतरा होगा तो वह कुल्हाडी से उन्हें काट देगा।

शीत इतनी भयंकर थी कि रक्त को जमा दे, ऊपर से मृत्यु का भय, अकेलापन, खाने के लिये सामग्री का अभाव, इन सबको झेलता हुआ भी बॉब गाउची निराश नहीं हुआ। उसने देखा कि मृत्यु आती है तभी तो आयेगी उसके पहले जीवन की आशा क्यों छोडी जाय। वह अभी भी जीवन के प्रति आशावान था जब कि दुनियाँ के लोग तो उसे मरा हुआ मान चुके थे। मानते क्यों नहीं ? ऐसे मौसम में भला कोई जीवित रह सकता है।

वह अपना अधिकांश समय सोने में ही बिताता। वायुयान का केबिन उसकी शीत से तो क्या रक्षा करता पर हाँ वह हवा से बचाव अवश्य करता था। उसने अपनी खाद्य सामग्री को खूब लम्बा खींचा फिर भी वह चौदह दिन से अधिक नहीं

चल सकी । अब उसके सामने जमी हुई कच्ची मछली खाकर पेट की आग बुझाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था । वह ऐसा करता तो पेट विद्रोह कर उठता था । यह भी एक विकट समस्या थी ।

समय बिताने के लिए उसने अपनी लॉग बुक के एक पन्ने से डायरी का काम लेना चाहा पर पेन की स्याही भी जम गयी थी सो वह डायरी भी नहीं लिख सका ।

भूख, प्यास, पांव का दर्द और निराशा इन सबसे भयंकर थी वहाँ की निस्तब्धता । उसने बाद में जब मौसम में कुछ सुधार हुआ तब अपनी डायरी में लिखा-"मैंने इससे पहले ऐसा निस्तब्धतायुक्त स्थान नहीं देखा था । कोई आवाज नहीं, न चिड़ियों की, न भेड़ियों की, न लोमड़ियों की अथवा किसी वस्तु की ।" ऐसी स्थिति में ही पता चल पाता है कि प्रकृति के प्रत्येक प्राणी का अपना एक महत्व है । ऐसी स्थिति में एक आत्मा का दूसरी आत्मा के प्रति सहज स्वाभाविक दुलार और आकर्षण का पता चलता है ।

उसने कितने ही भटके हुए विमान चालकों की सहायता की थी पर आज स्वयं असहाय स्थिति में फँसा हुआ था । गजब की प्राण शक्ति थी इस व्यक्ति में । भूख, प्यास और एकांत भी उसकी जीवन आशा को समाप्त नहीं कर सका था ।

२८ फरवरी को उसने एक वायुयान की मद्धिम सी गरगराहट सुनी । वह अपने स्लीपिंग बेग में से बाहर निकला । उसने देखा एक 'बीबर' था जो दो हजार फीट की ऊँचाई पर उड़ रहा था । गाउची ने उसके चालक का ध्यान अपनी ओर दिलाने के लिए अपनी बंदूक द्वारा चमकने वाला गोला छोड़ा पर चालक का ध्यान उधर नहीं जा सका ।

अब भी उसे आशा थी कि वह बच सकेगा । वह रात भर स्लीपिंग बेग में सोया रहता और दिन को झील की बर्फ पर 'एस ओ एस' व 'हेल्प' के संकेत अंकित करता । कभी-कभी उसकी उंगलियाँ बहुत दर्द करने लगती थीं । भूख और ठंड भी कम परेशान नहीं करती थी । ५ मार्च को उसने अपनी डायरी में लिखा-"भयंकर शीत सप्ताह था यह । मैं सोचता हूँ अब अधिक दिनों में इससे बच नहीं सकूँगा ।"

१२ मार्च को उसके ऊपर से दो वायुयान गुजरे पर वह उनके चालकों को

ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में असफल ही रहा । अब तो वह उंगलियों के दर्द के मारे झील तक जाकर संकेत भी नहीं बना सकता था । उसने सोलह मार्च को डायरी में लिखा-"आज मैंने भोजन के नाम पर प्याज के शोरबे का थैला गले के नीचे उतारा है ।"

अब मौसम बदल रहा था । तीस मार्च को दिन का तापमान शून्य तक ऊपर उठ चुका था । उसने आज यान के लेंडिग गियर में से से थोड़ा सा तेल निकालने की हिम्मत की । उसे जलाकर जमी हुई मछली को सेक कर उदरस्थ किया ।

अट्ठावनवें दिन १ अप्रैल को शाम छः बजे उसने फिर वही आशा भरी विमान की गरगराहट सुनी । उसके चमक संकेत को इस 'बीवर' के चालक रोनाल्ड शीयर डाउन ने पकड़ा । उसने विमान नीचे उतारा । जब उसने और उसके सह चालक ग्लेन स्टिबेंस ने बॉब गाउची को देखा तो आश्चर्य से चिल्ला उठे-"हे भगवान ! बॉब अभी तक जीवित है ।" सचमुच बॉब जीवित था, मानव की अदम्य जीवनेच्छा और साहस के प्रतीक रूप में ।

(यु० नि० ज्यो० जनवरी १९७५ से संकलित)

अभिमान बातों से नहीं, क्रियाओं से व्यक्त होता है

धर्मनिष्ठा और तप साधना के प्रतिदान-प्रतिफल के रूप में महाराज युधिष्ठिर को अक्षय पात्र मिल गया । अक्षय पात्र की विशेषता यह थी कि उससे जब भी माँगा जाता वह स्वादिष्ट और मधुर व्यंजन प्रदान करता । परीक्षा हेतु उसी दिन हस्तिनापुर की समग्र जनता को मनपसंद व्यंजन और पकवान ग्रहण करने का सार्वजनिक निमंत्रण दिया । हर किसी को इस अक्षयपात्र से लाभ उठाने की छूट थी । सारी नगरी उमड़ पड़ी और सभी पुरवासियों ने छक कर भोजन किया । इतना ही नहीं एक परंपरा की घोषणा भी की गयी कि महाराज सोलह हजार ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन करायेंगे । हस्तिनापुरी में तो इससे कम ब्राह्मण थे इसलिए बाहर के राज्यों से भी ब्राह्मण बुलाये गए और संख्या पूरी कर उन्हें वहाँ बसाया गया ।

अक्षय पात्र अपने ढंग से प्रयुक्त होता रहा । और तो सब ठीक ढंग से चलता

रहा लेकिन युधिष्ठिर को दंभ होने लगा कि मुझ जैसा कोई दानी नहीं है । इस दंभ को पुष्ट करता रहा-आश्रित ब्राह्मणों का जयगान । एकाध व्यक्ति ही किसी की प्रशंसा करने लगे तो मनुष्य का भाल गर्वोन्नत होने लगता है फिर वहाँ तो सोलह हजार समाज के प्रबुद्ध व्यक्ति युधिष्ठिर का यशोगान करते थे । यह ठीक है युधिष्ठिर ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग कठोर तप साधनाओं में गुजारा था परंतु कुछ कमजोरियाँ अभी भी शेष थीं जिन्हें विजित करना था और उनमें एक था यह सात्विक अभिमान ।

भगवान कृष्ण ने जब यह देखा कि उनका शिष्य अभिमान के मद में चूर होता जा रहा है तो उनसे यह सहन न हुआ । भगवान प्रणत जनों की सब ओर से रक्षा करने वाले हैं, उन्हें यह सहन भी कैसे होता कि एक साधारण सी बात उनके शिष्य के पतन का कारण बने । उनकी दृष्टि में अक्षय पात्र और सोलह हजार ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराना तो साधारण सी बात है । कई बार भगवान ने उन्हें परोक्ष रूप से समझाया भी सही परंतु युधिष्ठिर समझने में असमर्थ ही रहे । एक बार अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्षतः भी कहा-"धर्मराज ! मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणों के लिए तुम भोजन की व्यवस्था कर पुण्य कार्य में संलग्न हो परंतु उसके लिए अभिमान नहीं करना चाहिए ।"

"परंतु प्रभु मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं की जिससे अभिमान टपकता हो"-युधिष्ठिर ने कहा ।

"अभिमान बातों से नहीं क्रियाओं से व्यक्त होता है"-भगवान ने कहा और युधिष्ठिर को लेकर महाराज बलि के पास पहुँचे । बलि को युधिष्ठिर का परिचय देते हुए उन्होंने कहा-"दैत्यराज ये हैं पांडवों में अग्रज महादानी युधिष्ठिर । इनके दान से मृत्युलोक के प्राणी इस तरह उपकृत हो रहे हैं कि वे तुम्हारा स्मरण भी नहीं करते ।

"परंतु मैंने स्मरण किए जाने जैसा कार्य भी क्या किया था"-बलि ने कहा-"मैंने वामन को केवल तीन पग जमीन देने का वचन दिया था और वह पूरा किया भी । अब यह बात अलग है कि वह वामन विराट् बन गया ।"

"महाबली ! तुमने सब कुछ खोकर भी अपना वचन पूरा किया । इसलिए तुम्हारी ख्याति अमर हुई । धर्मराज की कीर्ति भी तुम्हारे यश की होड़ कर रही है । तुम दोनों पुण्यात्माओं का मिलन निश्चय ही सौभाग्यपूर्ण है ।"

बलि ने युधिष्ठिर की कोई पुण्य गाथा सुनाने के लिए कहा । भगवान कृष्ण ने उनके पूर्व जीवन का संपूर्ण विवरण क्रमवार सुनाया और अक्षय पात्र, सोलह हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने की नियम-परंपरा का भी उल्लेख किया । यह सब सुनते हुए युधिष्ठिर के चेहरे पर दर्प भरी मुस्कान खिलती जा रही थी । लेकिन वह तब विलुप्त हो गयी जब दानवेन्द्र ने कहा-"आप इसे दान कहते हैं, लेकिन यह तो पाप है ।"

महाबलि ने कहा-"धर्मराज ! केवल अपने दान के दंभ को पूरा करने के लिए किसी ब्राह्मण को आलसी बनाना पाप ही है । मेरे राज्य में तो किसी याचक को नित्य भोजन की सुविधा दी जाय तो भी वह स्वीकार नहीं करेगा ।"

आत्मबल हो तो मौत को भी ललकारा जा सकता है

कनाडा के एक नगर में अस्पताल के सर्जन ने मरणासन्न नये रोगी को भर्ती करते हुए, उसके साथ आए व्यक्ति से कहा-"मित्र ! मैं इसे बचाने का भरसक प्रयत्न तो करता हूँ परंतु कह नहीं सकता कि यह मृत्यु के मुँह से निकल जाएगा ।"

"डॉक्टर !" आहत के साथ आये व्यक्ति जिसका नाम फोर्ट सैंपसन था, ने कहा-"आप अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करें परंतु मैं नहीं सोचता कि मेरा मित्र मृत्यु के हाथों पराजित हो जाएगा क्योंकि घाव लगने के बाद लगभग वह एक सप्ताह तक कठोर परिश्रम करता रहा है ।"

"अच्छा"-आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से सर्जन ने सैंपसन और आरफंसन की ओर देखा । गोली आरफंसन के दिल से करीब एक इंच के फासले पर लगी थी । वह बांये फेफड़े से आरपार निकल गयी थी । लेकिन रीढ़ की हड्डी बची थी, जिसके सहारे आरफंसन काम करता रहा । फेंफड़े पर हल्का सा आघात भी व्यक्ति को निश्चेष्ट कर देने के लिए पर्याप्त है तो यह क्यों नहीं आश्चर्य की बात है कि घायल फेफड़े से आहत व्यक्ति एक सप्ताह तक श्रम करता रहा ।

"कमाल है"-सर्जन ने मन ही मन कहा-"इसे तो गोली लगने के घंटे भर

बाद ही मर जाना चाहिए था । इतने घातक घाव के बाद भी यह कैसे जिंदा रहा ।"

आरफंसन नाम का वह व्यक्ति एक शिकारी था । घटना सन् १९३३ की है । फरवरी की बर्फानी हवाएं कलेजों को चीरती बह रही थीं । कनाडा की वल्वलेरू नदी का पानी इन हवाओं के कारण जम कर बर्फ हो गया था । ऐसे मौसम में शिकार आसानी से मिल सकता है, यह सोचकर आरफंसन अपने डेरे से निकला । कंधों पर भारी रायफल टांग कर । उस क्षेत्र में एक जंगली बिल्ली ने बड़ा उत्पात मचा रखा था । रात के अंधेरे में वह चुपके से आती और गांववासियों के घरों में घुस जाती । दूध मुँहे बच्चे ही प्राय: उसका शिकार बनते थे । माँ के आँचल में मुँह छुपाये सो रहे बच्चों को वह इतनी चालाकी से उठाती कि बच्चे चीख भी न पाते । सुबह उठने पर या रात में ही कभी नींद खुलती तो उन्हें दीख पड़ती थीं खून की बूँदें, जो बच्चों के जख्मी हुए शरीर से टपक जाती थीं ।

आरंभ में तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार कौन बच्चों को उठा ले जाता है । इसलिए उन्होंने निगरानी करना शुरू कर दिया । एक अवसर पर यह देख लिया गया कि बच्चे उठा ले जाने वाला जानवर एक जंगली बिलाव है । लोगों ने उस समय हल्ला भी मचाया परंतु बिल्ली किसी कुशल अपराधी की तरह बच भागी । उसके बाद उसने और भी सावधानी बरतना आरंभ कर दी । यही नहीं वह बड़े बालकों को भी नोंच भागती थी । तथा अपना कार्यक्षेत्र भी बढ़ा दिया । वह आसपास के गांवों में भी शिकार करने लगी थी । गांव वालों ने बड़ी हायतोबा मचायी । उसे मारने की तरह-तरह से कोशिशें भी की गयीं । परंतु बिल्ली भी हद चालाक निकली । सभी शिकारियों को उसने चकमा दे दिया और साफ-साफ बच निकली ।

पास ही के गाँव में शिकारी आरफंसन रहते थे जिन्होंने कई खतरनाक अभियानों में सफलता पायी थी । जब उन्हें यह पता चला तो वे अपने साथियों के साथ उस खतरनाक बिल्ली का शिकार करने को चल दिए । उस क्षेत्र के लोगों से उन्होंने तलाश की तो पता चला कि बिल्ली प्राय: इसी जंगल में भाग जाया करती है । आरफंसन तथा उसके सहयोगियों ने उसी जंगल के पास अपना डेरा डाल दिया । रात को योजना बनायी गयी कि एक एक शिकारी शिकार पर जाये । बिलाव ही तो है, साथ में विश्वासपात्र रायफल बंदूक भी है फिर डर किस बात का । इससे

सारे जंगल में एक साथ तलाश भी हो जाएगी और बिल्ली को इधर-उधर भाग कर बचने का अवसर भी नहीं मिलेगा ।

सबके बाद में आरफंसन निकला । रायफल अपने कंधे पर रखकर । कुछ दूर जंगल में निकल जाने के बाद घास की झाड़ी से पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई दी । आरफंसन ने जगह का परीक्षण करने के लिए आसपास देखा भी सही । वहाँ छोटे-छोटे ताजे पैरों के निशान थे । कुछ सोचकर आरफंसन ने कंधे पर टंगी रायफल उतारी और आवाज की ओर निशाना साधकर गोली दाग दी । तुरंत फड़फड़ाहट सुनाई दी । आरफंसन ने जाकर टटोला वहाँ पर एक जंगली बिल्ली अपनी आखरी सांसे गिन रही थी । शायद यह वही थी जिसने आसपास के गाँवों में उत्पात मचा रखा था ।

संतोष और चैन की सांस लेकर आरफंसन मृतप्राय बिल्ली के पास पहुँचा और उसने वह देह उठा कर अपने कंधों पर टांग ली । रायफल में अभी एक गोली और बची थी । वह भी ज्यों की त्यों कंधे पर टांग ली । सहज ही मिल गयी अपनी इस सफलता पर और गर्व से फूला न समाता था । वह सोचता जा रहा था, लोग उसे कितना सराहेंगे जन-जीवन का यह कंटक निकल जाने का समाचार सुनकर कितना प्रसन्न होंगे इस क्षेत्र के निवासी लोग । थोड़ी देर तक चलते चलते उसे अपना डेरा पेड़ों के झुरमुट में से साफ दिखाई देने लगा । घर नजदीक आया देखकर उसकी भूख तेज हो गयी ।

दरवाजे पर पहुँचते ही उसने बिल्ली की लाश को कंधे से उतारने के लिए हाथ पीछे की ओर किये । 'धांय'-वातावरण को भेदती हुई रायफल की एक गोली उसकी पीठ को छेद गयी । वह हक्का-बक्का रह गया । इस सुनसान में ऐसा कौनसा दुश्मन है जिसने अपना बैर निकालने का यह उपयुक्त अवसर निकाला । कहीं मेरा ही तो कोई साथी नहीं । नहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार अपनी जानकारी में मैंने किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया । मेरा तो सभी से अच्छा व्यवहार है । गोली इतनी निकट से चली थी कि लगता था किसी ने उसकी पीठ पर ही रायफल की नाल टिका कर फायर किया है । इतनी सारी बातें उसने क्षण भर में सोच डाली और तेजी से अपने स्थान से हट कर दरवाजे की ओट में आ गया ।

पीछे मुड़कर देखा तो एकदम सन्नाटा कोई नहीं । रायफल की आवाज अभी

भी दूर पहाड़ियों से टकराकर गूंज रही थी । असमंजस की स्थिति में उसने बिल्ली को झटके से नीचे उतारा तो साथ में कंधे पर टंगी हुई रायफल भी खिसक गयी । देखकर आरफंसन को सारी स्थिति समझ में आ गयी । घायल बिल्ली के पंजों में रायफल का घोड़ा दबा हुआ था और जब वह मृतप्राय बिल्ली को कंधे से उतार रहा था तब इसी तरह घोड़ा दब गया और रायफल चल गयी ।

आरफंसन अभी यहाँ अकेला ही था । साथ के शिकारी साथी पता नहीं कब लौटें । उनके आने का इंतजार किया जाय तो पता नहीं शरीर में गोली का कितना विष फैल चुकेगा । मृत्यु की कामना उसे अभी थी नहीं फिर भी उसे भय भी नहीं था । आरफंसन को बड़ा विश्वास था अपने आप पर, अपने सुदृढ़ शरीर पर कि यह गोली उसका अंत नहीं कर सकती ।

जूते के फीते खोलने के लिए वह जैसे ही नीचे झुका-पीठ से रक्त का फोव्वारा फूट निकला । पहने हुए सब कपड़े खून से तर हो उठे । साथ ही जोरों की खाँसी भी आने लगी । उसने जूते उतारे, कमर सीधी की और गोली के घाव को हाथ से दबा कर अंदर तक घुस गया । दर्पण निकाला और पीठ की तरफ उसे रखकर पीछे मुड़कर देखा तो एक बड़ा सा सूराख ज्वालामुखी की तरह गर्म रक्त उगल रहा था । खाँसी आई और मुँह से झाग गिरने लगे । यह निश्चित पता चल गया था कि गोली पीठ से बाँये फेफड़े को चीरती हुई सीने से पार निकल गयी है । इसी प्रकार दर्पण में घाव देखते हुए खून को बहते रहने दिया गया तो जीवन लीला देखते ही देखते समाप्त हो जायेगी । यह सोचकर कुछ उपाय करने के लिए वह उद्यत हुआ ।

साथ में सामान में से एक तोलिया ढूँढ़ निकाला और उसे फाड़ कर फोये बनाने लगा । दर्पण में देखकर उसने घाव में तौलिया के टुकड़े भरे और खून का बहना बंद किया । फिर उसने तौलिये की ही पट्टी ऊपर से कसकर बाँध ली ।

खेमे में कोई कीटाणु नाशक औषधि तो थी नहीं । थोड़ी देर में ही पूरे शरीर में जहर फैल सकता था । इसलिए घाव को पानी से धोना उचित जँचा । परंतु पानी भी तो नहीं था, बाहर सर्द हवा बह रही थी । तंबू से बाहर निकलते ही बर्फीली हवाएं जख्मी घाव को और भी नुकसान पहुँचा सकती है । परंतु काम तो सब अपने ही हाथों से करना था । ठंडी हवा की परवाह किए बिना ही वह एक हाथ में वाल्टी और

दूसरे में कुल्हाड़ी लिए वह चल पड़ा । नदी की सतह पर जमी कठोर बर्फ को दाँये हाथ से कुल्हाड़ी चला कर तोड़ा और उसे बाल्टी में भर कर ले आया ।

डेरे में आकर आग जलायी, पानी गर्म किया और गर्म पानी से अपना घाव धोया । काफी समय तक धोते रहने के कारण शरीर के जख्म में तनाव पैदा हुआ और घाव दर्द करने लगा । आरफंसन ने इसके बाद घाव को अच्छी तरह से बाँध लिया । इसके बाद उसे खाने की याद आई ।

तंबू में तैयार बना खाना तो था नहीं अत: उसने स्वयं खाना बनाया । खाने के बाद वह अपनी स्थिति पर विचार करने लगा । बार बार उसके विचार इसी केन्द्र बिंदु पर पहुँचते कि कुछ भी हो मैं मरूँगा नहीं । यह सोचते सोचते ही उसे नींद आ गयी ।

शाम हुई, रात गहराई और सुबह भी हो गयी । साथी नहीं आए । शायद किसी शिकार के पीछे दूर तक निकल गए हों । पूरा दिन और पूरी रात गुजर गयी । दूसरे दिन आरफंसन के तीनों साथी शिकार से लौटे । कई बार ऐसा होता था । सप्ताहों तक वे लोग अपने शिकार का पीछा करते हुए वे दूर तक निकल जाया करते थे । आरफंसन ने उनके लौटने पर सारा घटनाक्रम कह सुनाया । आश्चर्य तो उसके साथियों को भी हुआ । गोली के आरपार हो जाने के बाद भी कैसे वह सामान्य दिनचर्या में व्यस्त रहा ।

तुरंत आरफंसन को निकट के अस्पताल में भर्ती करवाने का विचार किया गया । आसपास दूर मीलों दूर तक कोई कस्बा नहीं था । सबसे नजदीक के नगर तक पहुँचने के लिए भी कम से कम दो दिन का समय चाहिए । कुछ भी हो, चलना निश्चित हो गया । पैदल ही आरफंसन अपने साथियों के साथ अस्पताल तक गया ।

दो दिन तक चलते रहने के कारण वह थक गया था । इसलिए अस्पताल में जाकर वह बेहोश हो गया । डॉक्टर ने उसकी पूरी चिकित्सा की और वह बच गया । अन्य कोई और सामान्य मनोबल का व्यक्ति होता तो अवश्य ही मर जाता परंतु आरफंसन के पास आत्मविश्वास की अपार मूल्यवान सम्पदा थी और उसी के बल पर वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सका ।

शंकर और दधीचि की परंपरा जीवित है

हमारे देश में जो स्थान शंकर और दधीचि को प्राप्त है वह शायद अन्य किसी को नहीं । कारण है-दूसरों के हित में, समाज के हित में स्वयं का उत्सर्ग कर देने वाली उनकी निष्ठा । सागर मंथन के समय जब समुद्र से विष ज्वालायें चमक उठीं और उसके ताप से देवता तथा दानव सभी जलने लगे तो प्रश्न उठा कि इस स्थिति पर कैसे नियंत्रण किया जाय । सागर मंथन तो किया था अमृत की प्राप्ति के लिए और अमृत अभी तक निकला नहीं था, निकल आया था विष । इस विष को पीने के लिए भगवान शंकर नीलकंठ बने और उन्होंने सारा विष स्वयं पी लिया ।

दधीचि ने उससे भी एक कदम आगे बढ़कर अपनी अस्थियाँ तक समाज हित के लिए दे दीं । वृत्तासुर दमन और किसी प्रकार किया ही नहीं जा सकता था । विष्णु ने उसके हनन का रहस्य बताते हुए देवराज इंद्र से कहा था कि यदि दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाया जाय और उससे वृत्तासुर पर आक्रमण किया जाय तो ही वह मर सकता है । इंद्र-विष्णु का यह परामर्श और अस्थियों की याचना लेकर दधीचि के पास गए । दधीचि ने अपने जीवन से भी अधिक धर्म और संस्कृति को महत्व दिया तथा अपनी अस्थियाँ दान में दे दीं ।

बहुत से लोग इन घटनाओं को कपोल-कल्पित मानते हैं और तर्क देते हैं कि इस प्रकार के कोई चरित्र हुए ही नहीं । परंतु इन चरित्रों में जो आदर्श निहित है, मनुष्य उसी आदर्श के कारण मनुष्य कहलाने योग्य बन सका है । वह आदर्श है दूसरों के लिए, मानवता के लिए अपने आपको उत्सर्ग कर देने का साहस । जिस युग में हम जी रहे हैं उसमें भी मानव कल्याण के लिए, दूसरों की जीवन रक्षा के लिए और विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान की बलिवेदी पर अपने आपको चढ़ा देने वाले दधीचियों और शंकरों की कमी नहीं है ।

कुछ इसी तरह के शंकर और दधीचि की परंपरा के अनुयायियों का चरित्र मानवता को गौरवान्वित करता है । दिसंबर सन् १९५२ की घटना है । पेरिस की एक तिमंजिली इमारत से मारियस नेनार्ड नाम का एक नवयुवक गिर पड़ा । उसके गुर्दे में बहुत बुरी चोट आयी थी । बड़ी देर तक शरीर से खून बहता रहा, रोकने के लाख प्रयत्न करने के बावजूद भी खून का बहना रोका न जा सका । लग रहा था कि

मौत निश्चित है क्योंकि गुर्दा बहुत बुरी तरह क्षत-विक्षत हो चुका था । डाक्टरों ने अपना "कर्तव्य-जीवन की रक्षा" पूरा करने के लिए मारियस के शरीर का आप्रेशन करके गुर्दे को निकाल देने का निश्चय किया जो चोट लग जाने से एकदम चकनाचूर हो गया था ।

लेकिन जब आप्रेशन किया गया तो पता चला कि मारियस के शरीर में तो पहले से ही एक गुर्दा है । अब तो मृत्यु लगभग निश्चित थी । जन्म के समय से ही मारियस का शरीर एक ही गुर्दे से काम चला रहा था । उसकी माँ अपने एकमात्र पुत्र को इस प्रकार मृत्यु के मुख में जाते देखकर बेहाल थी । उसकी बैचेनी और व्यथित ममता को देखकर डाक्टरों ने एक अंतिम उपाय बताया कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति अपना गुर्दा देने को तैयार हो जाय तो उसके बेटे की जान बचायी जा सकती है ।

"दूसरा व्यक्ति कौन तैयार होगा डॉक्टर ! आप मेरा ही गुर्दा निकाल कर मेरे बेटे का जीवन बचा लीजिए"-माँ ने बड़े ही आर्द्र भाव से अनुनय की । डॉक्टरों ने उसके शरीर से आप्रेशन करके एक गुर्दा निकाला और मारियस के शरीर में लगा दिया । इस सारी प्रक्रिया में कुल छः घंटे लगे लेकिन तब तक मारियस को जीवन मिल चुका था । परंतु उसकी बूढ़ी माँ का शरीर इस आप्रेशन को बर्दाश्त नहीं कर सका और वह पुनर्जीवन को प्राप्त हुए अपने लाड़ले की ओर मुस्कराते हुए देखकर स्वयं चल बसी ।

इस घटना को तो माँ और पुत्र के परस्पर प्रेम वात्सल्य का प्रतीक कहा जा सकता है जिसमें प्रकृति ने ही एक दूसरे के प्रति त्याग और उत्सर्ग की विशेषताएं जोड़ रखी हैं । इस दृष्टि से कुछ अनास्थावादी व्यक्ति कोई खास बात नहीं का फतवा भी दे सकते हैं । परंतु ऐसी भी घटनायें हैं जिनसे संबंधित व्यक्ति एक दूसरे के संबंधी या मित्र होना तो दूर रहा एक दूसरे से परिचित भी नहीं थे । सर्वथा अपरिचित यहाँ तक कि किसी ने किसी की सूरत-शक्ल भी नहीं देखी । कई वर्ष पहिले पूर्वी भारत के किसी युवक ने जब अपना गुर्दा एक सात बच्चों की माँ को दान में दिया था तब उसके चर्चे समाचार पत्रों में सुर्खियों के साथ होते रहे थे । लगभग हजार मील दूर बैठे उस युवक को जब पता चला कि एक माँ बंबई में दोनों गुर्दे खराब हो जाने के कारण मृत्यु का ग्रास बनने जा रही है जो मानवीय करुणा से उसका हृदय द्रवीभूत हो गया । माँ के छिन जाने के बाद बच्चे किस प्रकार

अनाथ हो जाते हैं, यह वह स्वयं जानता था क्योंकि उसकी स्वयं की माँ बचपन में मर गयी थी और तब वह बेरोजगार, असुरक्षित सा अनुभव कर रहा था।

प्रकृति ने मनुष्य के शरीर में दो गुर्दे बनाए हैं। एक से भी काम चल सकता है-यह सोचकर वह किसी प्रकार उस स्थान पर पहुँचा जहाँ कि वह माँ जन-जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रही थी। न कोई रिश्ता न कोई परिचय। फिर भी उस युवक ने जिस संवेदनशील मानवीयता का परिचय दिया था उसे सर्वत्र स्वच्छ और अनुकरणीय बताया गया।

रोगाक्रांत मनुष्यों की रोगमुक्ति के लिए औषधि अनुसंधान में स्वयं को प्रस्तुत करने वाले नरपुंगवों का भी अभाव नहीं रहा है। प्रथम महायुद्ध के समय अमेरिका के दक्षिणी प्रांतों में 'पैलाग्रा' नामक एक संक्रामक रोग फैल गया था। रोग की भयंकरता का अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि अधिकांश रोगी प्राथमिक लक्षणों के प्रकट होने के बाद शीघ्र ही पागल हो जाते थे और उसी स्थिति में मृत्यु के ग्रास बन जाते थे। हजारों व्यक्ति इस रोग के शिकार हो चुके थे। डॉक्टरों को इस रोग के लक्षण तो ज्ञात थे परंतु वे औषधि का निदान करने में असमर्थ थे। बीमारी एकदम नयी थी और इस कारण उसका कोई उपचार भी संभव नहीं था।

कुछ चिकित्सा विज्ञानियों ने औषधि ढूँढ़ी थी पर अभी तक उसका परीक्षण नहीं किया जा सका था। इसके परीक्षण के लिए उन्हें कुछ ऐसे व्यक्तियों की तलाश थी जो तमाम शारीरिक यंत्रणाएं सहन कर सकें और स्वयं का प्राणोत्सर्ग करने के लिए भी तत्पर रहें। जैक्सन जेल के कुछ अपराधियों को जब इसका पता चला तो उन्होंने स्वेच्छया अपने आपको परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया। परीक्षण के दौरान उनके शरीर में 'पैलाग्रा' के कीटाणु प्रविष्ट कराये और उनके प्रभाव, प्रतिक्रिया का अध्ययन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता रहा। इस प्रयोग-परीक्षण के दौरान ही डॉक्टर रोग के उद्‌गम के संबंध में सही सूचनाएं प्राप्त कर सके। किंतु इस बीच वे अपराधी भयानक यातनाएं भोगते रहे और उनके अंग गलने लगे। कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु हो गयी। वे तो मर गए परंतु उन्होंने अपने बलिदान से उन हजारों व्यक्तियों को बचा लिया जिनके सिर पर पैलाग्रा की छाया मंडरा रही थी।

भारत की ही घटना है। मई १९५० में एक लड़का आग में बुरी तरह झुलस गया। उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी पर विज्ञान ने चिकित्सा को जो

सामर्थ्य सिद्धि उपलब्ध करा दी थी उसके प्रताप से वह लड़का बच गया । लड़का बच तो गया पर उसके चेहरे तथा अन्य अंगों की चमड़ी इतनी बुरी तरह झुलस गयी थी कि यदि वह जीवित रूप में किसी के सामने खड़ा हो जाता तो देखने वाला उसे प्रेत समझ कर भयभीत हो उठता । यों पूरा शरीर ही बुरी तरह झुलस गया था इसलिए किसी अन्य स्थान की चमड़ी काटकर भी मुँह आदि पर नहीं लगायी जा सकती थी । उसी अस्पताल में मरणासन्न एक रोगी था । डॉक्टरों को जिसके निरोग होने की कोई आशा नहीं थी । उस रोगी ने कहा-"डॉक्टर ! मुझे मरना तो है ही । बिस्तर से उठकर मैं चलने-फिरने लायक की स्थिति में तो आऊँगा नहीं इसलिए मेरे शरीर की चमड़ी निकाल कर उस युवक को लगा दीजिए ।"

डॉक्टरों के सामने समस्या थी जीवित आदमी के शरीर से पूरी चमड़ी निकालें तो कैसे ? स्वजन-संबंधी भी उस मरीज को मना कर रहे थे । पर जिस प्रकार दधीचि ने अपने संकल्प बल से प्राण त्याग दिए, उसी तरह उक्त मरीज भी एक घंटे के अंदर ही अंदर इहलीला समाप्त कर चला गया । डॉक्टर उसके शव को आपरेशन रूम में ले गए तथा उसके शरीर से चमड़ी काट-काट कर झुलस गए लड़के के शरीर पर वहाँ लगाने लगे जहाँ से कि वह जल गया था । जिस तरह गुलाब के पौधे की कलम काटकर दूसरी जगह लगाने पर वह उग आता है, उसी प्रकार मृत्यु के तुरंत बाद मनुष्य के कई अंग सजीव रहते हैं । मृत व्यक्ति की चमड़ी को जले हुए युवक के शरीर ने उसी प्रकार अपना लिया जैसे वह कभी परायी रही ही न हो ।

गया में कुछ वर्षों पूर्व एक २८ वर्षीय युवक श्री रामेश्वर चौधरी को किसी संगीन अपराध में मृत्युदंड मिला । सजा पाए व्यक्ति और वह भी मृत्युदंड प्राप्त प्राय: अपने पिछले जीवन को याद कर ग्लानि से भर उठते हैं । वैसा ही कुछ रामेश्वर चौधरी के साथ हुआ । वह सोचता रहा कि मैंने जीवनभर कोई अच्छा काम नहीं किया और अब मौत भी आ गयी । कुछ ही दिनों बाद यह जीवन समाप्त हो जाएगा । इसी ग्लानि-पश्चाताप की आग में वह झुलसता रहा । जब फांसी का दिन आया तो अधिकारियों ने सुबह ही उससे पूछा-"तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है ? जीवन दान के अतिरिक्त तुम जो भी उचित इच्छा बताओगे वह पूरी की जायेगी ।" तो रामेश्वर को लगा कि कोई सत्कार्य करने का अवसर मिल गया है । उसने कहा-"मेरी आँखें निकाल कर किसी अंधे व्यक्ति को लगा दी जाँय । मेरे शरीर का सारा

रक्त निकाल लें और मेरे शरीर को जीव विज्ञान के छात्रों को सौंप दिया जाय ताकि वे इसका उपयोग अध्ययन के लिए कर सकें ।''

जीवन भर दुष्कर्म करते रहने के बाद अंतिम समय जागे इस विवेक की लोगों ने सराहना की और फिर तो कितने ही व्यक्तियों ने मरणोपरांत नेत्रदान के लिए अपने नाम नोट कराये । अपने शरीर को जीतेजी मानव कल्याण के लिए समर्पित करने वालों की संख्या तो बहुत बड़ी है । कुछ घटनाओं का ही उल्लेख यहाँ कर पाना संभव है । अमेरिका में जब पनडुब्बी का निर्माण किया गया तो पानी के भीतर बहुत गहरे जाने पर शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है-यह जाँचने के लिए वैज्ञानिकों ने ऐसे व्यक्तियों का आह्वान किया जो समुद्र की काफी गहराई में जाकर वहाँ होने वाले अनुभवों को बता सकें । इसी अपील को सुनकर तेईस नवयुवकों ने अपने आपको प्रस्तुत किया और कहा कि जैसे भी वे चाहें उनका उपयोग कर सकते हैं । वैज्ञानिकों ने उन्हें पनडुब्बी में बंद कर भेज दिया । वे तेईसों युवक साठ दिन सागर की अतल गहराइयों में लोमहर्षक अनुभव प्राप्त करते रहे । स्वच्छ वायु के अभाव में कोई व्यक्ति कब तक जीवित रह सकता है । लाख साधन, वैज्ञानिक प्रबंध होने पर भी जीवन एक रोमांचक अनुभूति बन जाता है लेकिन ये युवक पूरी अवधि तक तमाम अनुभूतियों को सहते रहे और साठ दिन बाद जब वे युवक बाहर आए और वैज्ञानिकों ने उनसे जो सूचनाएं प्राप्त कीं, उनका उपयोग कर प्रतिवर्ष हजारों सैनिकों की प्राणरक्षा की जाती है ।

उन दिनों पनामा नहर पर काम चल रहा था । तभी वहाँ मलेरिया फैला । हजारों मजदूर इस ज्वर के शिकार हो गए । नहर निर्माण का कार्य लगभग ठप्प पड़ गया । डॉक्टरों की टोली इस रोग को समूल नष्ट करने की बात सोच रही थी पर उनके परीक्षण के लिए ऐसे लोगों की जरूरत थी जो अपने शरीर में मलेरिया के कीटाणु प्रवेश करा सकें । अपने भाइयों को रोगमुक्त कराने के उद्देश्य से वहाँ नहर पर काम कर रहे कुछ नवयुवकों ने निर्भीकतापूर्वक इस रोग के कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट करने दिया । उन दिनों मलेरिया आज की भांति सामान्य रोग नहीं था । महीनों तक यह ज्वर चलता और कई व्यक्ति इससे मर जाते थे । न मरने वाले भी लंबे समय तक शारीरिक रूप से असमर्थ और अक्षम हो जाते थे । ज्वर में भयंकर पीड़ा भी होती थी पर उन युवकों ने इन तमाम खतरों को जान-बूझकर उठाया तथा डॉक्टरों ने उनकी

साहस भरी पहल के कारण ही मलेरिया को नष्ट करने का उपाय खोजा । इस तरह के असंख्यों उदाहरण हैं । मानवता के लिए अपना उत्सर्ग कर मोटी कठिनाइयाँ सहने का अभ्यास मानवीय गुणों के विकास हेतु तो किया ही जाना चाहिए ।

वफादारी और ईमानदारी तो मनुष्य का धर्म है

बड़ोदा स्टेट में एक साधारण कर्मचारी से अपना जीवन आरंभ कर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट तक पहुँचने वाले एस० आर० शिंदे ने सारे जीवन ईमानदारी और मेहनत की कमाई खाई । उन्होंने अनुचित रूप से एक पैसा भी कभी नहीं छुआ । अनीति की कमाई खाने वालों या बिना श्रम किए पैसा कमाने वालों में एक यह बुराई आ जाती है कि वे परिश्रम, पुरुषार्थ से विमुख होकर दूसरे स्रोतों से ही धन प्राप्ति की कामना करते रहते हैं । फलस्वरूप वे संपन्नता की दृष्टि से भले ही आगे बढ़ जाँय, प्रतिभा और योग्यता में औरों से पिछड़े ही रहते हैं । जबकि न्याय-नीति की ही कमाई खाने वालों में अपनी योग्यता पर बराबर विश्वास बना रहता है और वे ईमानदारी का पथ अपनाने के कारण परिश्रमी-पुरुषार्थी भी बने रहते हैं ।

यही कारण है कि बेईमान व्यक्ति संपन्न होते हुए भी पिछड़ जाते हैं और ईमानदार व्यक्ति अपेक्षाकृत कम संपन्न होने पर भी ऊँचे उठ जाते हैं । एस० आर० शिंदे की सफलता का राज भी यही था-मेहनत और ईमानदारी । स्टेट में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी और हर कोई उनका सम्मान करता था । उनकी बातों को हर कोई बुजुर्ग अभिभावक की तरह मानता था । स्वयं महाराजा सयाजीराव भी उनका बड़ा सम्मान करते थे । कई राजकीय मामलों में जो गोपनीय होने के साथ-साथ उलझे हुए भी होते थे, महाराज उनकी सलाह लेते तथा उनके सुलझे हुए निष्पक्ष परामर्श को मान लेते ।

स्टेट से बाहर जब कभी किन्ही महत्वपूर्ण कार्यों के लिए बाहर जाना होता तो

भी महाराज उन्हें साथ ले जाते थे। महाराज के साथ जाने पर शिंदे जी की यात्रा और भोजन के अतिरिक्त उन पर किसी प्रकार निर्भर नहीं करते थे। आरंभ में तो शिंदेजी भोजन भी नहीं करते थे परंतु जब उन्होंने देखा कि महाराज इस बात को अन्यथा लेते हैं तो उन्होंने महाराज के साथ ही भोजन करना आरंभ कर दिया। अन्य मंत्री और अधिकारीगण जो अनीति और बेईमानी से धन ऐंठा करते थे शिंदेजी को मूर्ख समझते थे। दुनिया क्या कहती है अथवा लोग क्या समझते हैं इसकी चिंता किए बिना शिंदेजी निर्धारित रीति-नीति पर दृढ़ रहते।

एक बार वे महाराज के साथ पेरिस गए। वहाँ महाराज जौहरी की दुकान पर गए और उन्होंने जवाहरात दिखाने के लिए कहा। वेश-भूषा और चेहरे से टपकते हुए अभिजात्य को देखते ही जौहरी ने ताड़ लिया कि ग्राहक बड़ा है। उसने अपनी दुकान में उपलब्ध अच्छी से अच्छी किस्म के जवाहरात दिखाये। महाराज ने वह सब खरीद लिए। दुकान के काउंटर पर बैठे एक कर्मचारी ने शिंदे जी से पूछा- "आपका कमीशन नकद दिया जाय या चैक से लेना पसंद करेंगे।"

"मेरा कमीशन ? किस बात का ?"-शिंदे ने आश्चर्य से पूछा।

"शायद आप पहली बार इस दुकान पर आए हैं। इस बाजार का यही रिवाज है कि यहाँ जो अच्छे ग्राहक लाता है, उसे कमीशन दिया जाता है।"

"यहाँ का रिवाज चाहे जो हो पर मैं महाराज का सेवक हूँ। यह कमीशन मैं नहीं लूँगा"-शिंदेजी ने कहा-"आप इस कमीशन को काटकर ही बिल बना दीजिए। यह कमीशन ग्राहक को ही मिलना चाहिए।"

"अच्छी बात है"-कर्मचारी ने कहा-"मैंने पहली बार आप जैसा व्यक्ति देखा जो अनायास प्राप्त होने वाले धन को इस निस्पृहता से देख रहा हो। क्या मैं आपकी ईमानदारी और महाराज के प्रति निष्ठा की सूचना उन तक पहुँचा दूँ।"

"नहीं, नहीं"-शिंदे ने कहा-"इसमें क्या खास बात है। वफादारी और ईमानदारी तो मनुष्य का धर्म है और धर्म कोई प्रदर्शन के लिए तो होता नहीं।" और शिंदे महाराज सयाजीराव के पास आकर खड़े हो गए।

प्रगाढ़ प्रेम जिसमें साहस और संतुलन भी जुड़ा रहा

छोटा सा बच्चा केसी अस्पताल में भर्ती किया गया । उसे विचित्र प्रकार की मस्तिष्क सूजन की बीमारी उठ खड़ी हुई । ऐसी जिसे डॉक्टरों ने असाध्य बता दिया था । मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं से रिसने वाले द्रव की मात्रा बढ़ गयी थी और सिर के भीतर के सारे पदार्थ में सूजन बढ़ती जा रही थी । ऐसे रोगी बहुत दिन नहीं जीते ।

बच्चे के माँ-बाप होल्टर दंपत्ति उस नन्हें और सलौने बच्चे को बहुत प्यार करते थे । उन्हें वह हाथ से जाता दिखा तो वे विचलित हो गए ।

फिर उन्होंने सोचा कि रोने-धोने से क्या फायदा । डाक्टर से मिला जाय और यह पूछा जाय कि क्या प्राण बचाने के लिए कोई उपाय संभव है ? धैर्य और संतुलन जब भी समर्थ होगा । तब विलाप करने की जगह उपाय सोचेगा ।

डाक्टरों ने बच्चे के शिर और पेट के बीच एक नली लगा रखी थी । जिससे वह बहने वाला द्रव बह सके । पर इस नली के रुकने का भी खतरा था सो वह रुक भी गयी । दूसरा आपरेशन करके उस समय तो वह रुकावट दूर कर दी गयी, पर चिंता यह थी कि बार-बार इस प्रकार आपरेशन कब तक किए जाते रहेंगे और बच्चा उन्हें कब तक सहन करता रहेगा ? इसी स्थिति में तीसरा आपरेशन हुआ और रोगी मृत्यु के मुख में झूलने लगा ।

श्री होल्टर ने डॉक्टर से पूछा कि क्या कोई उपाय बच्चे को बचाने का शेष है ?

डॉक्टर ने उत्तर दिया-"काश, कोई बढ़िया संवेदनशील नली ऐसी बन सकी होती जो मस्तिष्क और कंठशिरा के बीच इस तरह लगाई जा सकती तो बच्चे के बचने की संभवना संभवतः बढ़ जाती ।"

श्री होल्टर के अधिक गंभीरता से पूछने पर डॉक्टरों ने नली की रूपरेखा, उसमें प्रयुक्त होने वाले रासायनिक पदार्थों का ब्योरा भी बता दिया । पर साथ ही उनने यह भी कहा-"यह प्रयोगात्मक कार्य है । नली बनने और उसकी उपयुक्तता के परीक्षण में बहुत समय लग सकता है । ऐसे निर्माण जल्दी नहीं होते ।"

होल्टर को आशा की एक किरण दिखी सो उन्होंने कार्यान्वित करने की ठानी ।

रोने-धोने और दुर्भाग्य को कोसने से तो यही अच्छा है कि जो संभव है उसके लिए कुछ उठा न रखा जाय ।

डॉक्टर उस तरह की नली बनाने के लिए बहुत दिनों से प्रयत्न कर रहे थे । कितने ही तरह के वाल्व उनने बनाए और आजमाए थे, पर सफलता की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हो रही थी ।

जान होल्टर कई इस तरह के कारखानों में गए जहाँ इस तरह के निर्माण होते थे । यों उनका अपना भी इस संबंध में कुछ ज्ञान था । अस्तु एक कारखाने का सहयोग उनने प्राप्त कर लिया और उस निर्माण में इंजीनियरों के साथ स्वयं भी जुट गए ।

जरा सी विपत्ति आने पर या उसकी आशंका उत्पन्न होने पर आमतौर से लोग अपना धैर्य और संतुलन खोकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं । पर होल्टर दूसरी ही मिट्टी के बने थे । उनने विलाप में होने वाली शक्ति को बरबादी से बचाने की युक्ति सीखी थी, तभी तो बच्चे के वियोग की वेदना ने उन्हें ऐसे कठोर कर्तव्य में जुटा दिया जिसमें न केवल शारीरिक और मानसिक श्रम की वरन् समस्त एकाग्रता की भी जरूरत थी । साथ काम करने वालों ने इस अद्‌भुत व्यक्ति के अद्‌भुत मानसिक संतुलन को देखा और वे भी प्रस्तुत निर्माण कार्य में अधिक प्रयत्न के साथ जुट गए ।

नली डॉक्टरों की कल्पना के लगभग की बन गयी थी पर उसमें एक कमी निकल पड़ी । वह ऐसे प्लास्टिक की बनी होनी चाहिए थी जो स्थानीय तापक्रम को भी सहन कर ले । इस नली से काम न चला । एक सप्ताह तक अठारह-अठारह घंटे का श्रम और उस प्रयोग में बहुत साधन व्यर्थ गया । तब भी होल्टर ने हिम्मत नहीं हारी और दूसरे निर्माण की व्यवस्था बनाने के लिए निकल पड़े । उस बार उन्हें और भी कड़ी अग्नि परीक्षा में से गुजरना पड़ा । बच्चा मौत की घड़ियों में झूल रहा था । उन्हें प्लास्टिक कारखाने का पता लगाने और उनके दरवाजे पर ठोकरें खाने में भटकना पड़ रहा था । अपने उत्पादन को रोक कर उस नये प्रयोगात्मक झंझट में पड़ने को कोई तैयार नहीं होता था । दूसरों की सहायता के लिए अपने काम का हर्ज किया जाय इतनी उदारता सहज ही कहाँ मिलती है ?

डॉक्टरों को इसी बीच एक आपरेशन और करना पड़ा, पर जान निराश नहीं हुए । वह नली के निर्माण की प्रक्रिया में लगे ही रहे और आखिर उनने रास्ता निकाल ही लिया । सिलिकान नामक पदार्थ ढूँढ़ निकाला गया जो अभीष्ट तापमान

सह सके । नली पाँच दिन के प्रयास में आखिर बन ही गयी ।

ऐसे साहसी धैर्यवान एवं पुरुषार्थी व्यक्ति की सहायता ईश्वर ने भी की । नली के प्रयोग-परीक्षण में लगभग दो सप्ताह निकल गए । इस बीच कई कठिन आपरेशन सहन करके भी बच्चा जीवित रहा । नली का प्रयोग हुआ और इसे एक आश्चर्य ही कहा जाय कि उसके सहारे मृत्यु को परास्त कर सकना संभव हो गया ।

समय तो लगा पर बच्चा शक्ति संचय करने लगा और धीरे-धीरे मौत के मुँह से बाहर निकल आया । साहस ने हर पग पर काम दिया । असाध्य समझे जाने वाले महत्वहीन परिवार के बालक की डॉक्टरों ने उपेक्षा नहीं की, न हिम्मत हारी, वरन् वे इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ जुटे रहे कि जो कुछ अधिक से अधिक संभव हो सो किया जाय । साहस का दूसरा पुतला था जान होल्टर । मरणासन्न पुत्र का मुँह देखते रहने और आँसू बहाते रहने की अपेक्षा उनने यही उचित समझा कि उन बहुमूलय क्षणों को उस प्रयास में लगाया जाय जिससे बालक की कुछ सहायता संभव हो सके ।

इन दो साहसी पक्षों के प्रयत्न से न जाने कैसी शक्ति छोटे से बालक को मिली कि वह लगभग एक दर्जन अति गंभीर आपरेशनों का दबाव सहन करता रहा । जबकि इतने छोटे बालक के लिए एक भी मेजर आपरेशन असह्य होता है ।

मौत हार गयी और इन तीनों दुस्साहसियों की हिम्मत जीती । बच्चा अच्छा हो गया । उसके नवजीवन पर सर्वत्र आश्चर्य भी किया गया और खुशियाँ भी मनाई गयीं ।

इस सत्साहस की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उस आविष्कार से असंख्य ऐसे ही असाध्य रोगियों के प्राण बचाने की संभवना में महत्वपूर्ण योगदान मिला । तब से लेकर अब तक न जाने कितने असाध्य रोगी इस उपलब्धि की सहायता से अपने प्राण बचाने में समर्थ हुए होंगे ।

प्रेम की गंभीरता भावावेश में प्रकट की जाती रहती है, पर उसकी यथार्थ गंभीरता को इन प्रयत्नों के साथ जोड़ा जाना चाहिए जो प्रियपात्र की सेवा-सहायता के लिए तन्मयतापूर्वक किए जाते हैं । श्री जान होल्टर ने अपने बच्चे को सच्चा प्यार किया । उसका प्रमाण था उसका संतुलन, धैर्य और साहसयुक्त प्रयास । भावुकता के साथ ऐसी साहसिकता जुड़ी रह सके तो कितना अच्छा हो ।

(यु० नि० यो० फरवरी १९७८२ से संकलित)

बदला तो फिर ऐसा बदला

नाम था उसका 'जारक खान'। कबायिली सरदार का छः फुट चार इंच ऊँचा दैत्याकार होनहार बेटा, समाज की अव्यवस्था तथा दुष्प्रवृत्तियों का शिकार होकर वह दस्यु बन गया। सामान्य दस्यु दल का नायक नहीं, एक हजार सुसंगठित दस्यु सेना का दुर्धष सेनापति। भारत के पश्चिमोत्तर सीमांत क्षेत्र को अपने आतंक से हिला देने वाला। फौज तथा हवाई जहाजों का उपयोग करके भी ब्रिटिश सरकार जिससे पार न पा सकी। उसके सर की कीमत बढ़ते-बढ़ते सन् १९३० तक २५००० पौंड (तीन लाख पच्चीस हजार रुपया) तक पहुँच गई। सबसे अप्रभावित उसका आतंक बढ़ता हुआ १९३९ में अपनी चरम सीमा पर था।

किंतु जिस दुष्टतापूर्ण कार्य से उसे विरत करने में ब्रिटिश सरकार समर्थ न हो सकी, उसे उसके अंतःकरण में पड़े हुए एक छोटे संस्कार ने कर दिया। अपनी दुष्टता की तृप्ति हेतु एक व्यक्ति को कोड़ों से पीट-पीट कर अपने हाथों मार डालने के बाद जारक को पता लगा कि वह एक मुल्ला था। निर्दोष तथा अपनी कोम की सेवा में लगा हुआ। इस पवित्र व्यक्ति की हत्या का उसे इतना अधिक दुख हुआ कि फिर वह अपने उस कार्य को चालू न रख सका। मनुष्य को यदि वास्तविक आत्मग्लानि हो जावे तो वह आत्म-सुधार हेतु बड़े से बड़ा कदम उठा सकता है। जारक चुपचाप अड्डे से भाग निकला और प्रायश्चित स्वरूप दो वर्ष तक भिखारी की तरह घूमता रहा। फिर अपने पिता के पास आत्म-समर्पण कर दिया।

पिता द्रवित हो गया और उसे छिपा लिया। किंतु कानून की निगाह से वह बच न सका। सुराग लगा और पकड़ा गया। मुकदमा चला और फांसी की सजा सुना दी गई। अब जारक की मृत्यु दिवस की प्रतीक्षा की जा रही थी। किंतु लोगों को क्या पता था कि 'जारक' एक कैदी की घृणित मौत नहीं, शहीद की शानदार मौत मरेगा, जिसके शव के आगे बड़े-बड़े अधिकारी मस्तक झुकाएंगे। जारक खान के अंतःकरण का दुष्ट दस्यु मर चुका था, पर वीर योद्धा जीवित था। सन् १९४२ में विश्व युद्ध में हिटलर का बढ़ता हुआ प्रभाव। ब्रिटिश सरकार के लिए एक-एक सिपाही मूल्यवान था। तभी जारक ने प्रस्ताव रखा-"मेरे जैसे व्यक्ति के लिए मौत कोई मायने नहीं रखती। मरना तो मुझे है ही। अच्छा हो कि फांसी के फंदे को गंदा

करने के स्थान पर मुझे दुश्मन की गोलियों का सामना करने दिया जावे ।" उसमें विश्वास की झलक तथा हृदय की सच्चाई की महक थी । अधिकारियों ने बात आगे बढ़ाई और प्रस्ताव स्वीकृत हो गया ।

जारक को विभिन्न क्षेत्रों में जासूसी पर तथा गुरिल्ला टुकड़ियों में रखा गया । हर जगह उसकी सूझ-बूझ और साहस की धाक जमती रही । १९४३ में उसे बर्मा की गुरिल्ला टुकड़ी में भेज दिया गया । अपने कार्य और गुणों के कारण टोली के नायक का वह परम मित्र बन गया ।

६ अप्रैल को वह अपने एक गोरखा साथी के साथ जापानी शत्रु सेना की टोह लेने गया । लौटने पर उसने देखा कि उसके अड्डे पर जापानी सेना की एक टुकड़ी ने अधिकार कर लिया है । १२ साथियों में से ९ की वह हत्या कर चुके थे । शेष तीन बँधे थे । जिनमें एक उसका नायक भी था । दो को जापानी सैनिक संगीन चुभो-चुभोकर अधमरा कर चुके थे और उनके बाद नायक का नंबर था ।

जारक सुरक्षित था-आसानी से भाग सकता था । किंतु अपने साथियों की दुर्दशा उससे न देखी गई । उसके जिन संस्कारों ने उसे दस्यु जीवन से तथा फांसी के फंदे से मुक्ति दिलाई थी, एक बार पुनः आगे आ गए । उसने उनका निर्देश पुनः माना और जो सम्मान पाया उसके लिए बड़े बड़े सेनानी तरसते हैं ।

जारक ने अपने गोरखा साथी को तेजी के साथ पास की छावनी से सहायता लेने को कहा । स्वयं अपने लिए उसने रक्त की अंतिम बूंद तक साथियों को बचाने का संकल्प लिया । गोरखा साथी के सुरक्षित दूरी तक निकल जाने का भरोसा होते ही उसने अपनी पिस्तौल निकाल ली तथा तैयार हो गया अपनी आत्माहुति-मित्र प्रेम के नाम पर देने के लिए । उसका उद्देश्य था किसी प्रकार छावनी से सहायता आने तक जापानियों को उलझाये रखना ।

अब तक उसके दोनों साथी भी मर चुके थे । जापानी सैनिक बढ़े नायक की ओर । जारक की पिस्तौल गरज उठी । जब तक सम्हलें तब तक दो सिपाही उसका निशाना बन चुके थे । अब मोर्चा चालू हो गया । अकेला जारक अपनी फुर्ती तथा कुशलता के बल पर पूरी टुकड़ी को आधा घंटे तक नचाता रहा । फिर उसने सोचा यदि इन गोलियों के युद्ध में मारा गया तो नायक न बच सकेगा । इस प्रकार देर तक पूरी टुकड़ी को उलझाये रखना भी संभव नहीं । अतः बिना घायल

हुए ही स्वयं को पकड़ा दिया । जापानी कमांडर ने आज्ञा दी-"बाँधकर गोलियों से भून दो ।" जारक जोर से हँसा, बोला-"मौत के लिए इतने आसान तरीके के लिए धन्यवाद ।" कमांडर चिढ़ा, बोला-"संगीन चुभो-चुभोकर मार डालो ।"

किंतु अभी जारक का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ था । उसे जापानियों को उलझाये रखना था अपने शरीर से । इसके लिए आवश्यक था कि मृत्यु का धीमा से धीमा मार्ग चुनना । जिसका अर्थ था लंबे समय तक मर्मांतक शारीरिक कष्ट । किंतु जारक हर शर्त पर तैयार था । उसकी आँखों में वैसी ही चमक थी जैसी कभी संयमराय की आँखों में दीखी होगी, पृथ्वीराज को बचाने के लिए अपने शरीर का मांस काट-काट कर गिद्धों को खिलाने का संकल्प करते समय और उसने अपने संकल्प को पूरा भी इस शान से किया कि यदि कहीं से संयमराय देख रहे होंगे तो उनकी आँखों से भी दो बूंद आँसू निकल पड़े होंगे ।

जारक ने अपने नायक की ओर देखा और एक कठोर व्यंग्य छोड़ा अपने प्रतिद्वंद्वियों पर । बोला-"हम लोग अपने शत्रुओं को हंटर मार-मार कर सुला देते हैं । इन कायरों के हाथों में उतनी ताकत कहाँ ?" निशाना ठीक बैठा । जापानी कमांडर अपना संतुलन खो बैठा, समय बे समय का ध्यान, सैनिक रीति के नियम वह भूल गया । गरज पड़ा-"बाँध दो इसके हाथ ऊपर डाल से और उधेड़ दो चमड़ी बैल्टों की मार से ।" सुनने वाला सिहर जाता पर जारक मुस्करा उठा अपनी सफलता पर । उसने देखा अपने नायक मित्र की ओर रहस्य भरी दृष्टि से मानों कह रहा हो-"अब मैंने तुम्हें बचा लिया मेरे दोस्त ।" नायक के नेत्र डबडबा आये पर असमर्थ था । जापानी इस मौन संवाद से अनभिज्ञ अपनी कार्यवाही में लगे थे ।

जारक पर दो सैनिकों ने बैल्टें उतार कर पूरी शक्ति से बरसाना प्रारंभ कर दीं । जारक खड़ा था शांत-निश्चल । जब कभी जापानी कमांडर की आँखों से आँखें मिलतीं तो खिल-खिलाकर हँस पड़ता । कमांडर जल-भुन जाता-कोड़े तेज हो जाते । शरीर की चमड़ी, मांस एवं रक्त के कण, धुनी हुई रुई के रेशों की तरह हवा में उड़ रहे थे और जारक जैसे शरीर से परे, "नैनं छिंदंति शस्त्राणि" बना हुआ खड़ा था । मारते-मारते सिपाहियों के हाथ थक गये तो फिर चुनौती दी-"बस, इसी बूते पर चले थे हमारा मुकाबला करने ?" फलस्वरूप दो के स्थान पर चार नये सैनिक आ गए ।

अनवरत दो घंटे तक उस राक्षसी मार का सामना वह करता रहा । निढाल होने

लगा किंतु जैसे ही कमांडर उसके परीक्षण को आगे आता कहता-"घबरा मत अभी मैं जिंदा हूँ ।" भयंकर शारीरिक पीड़ा, शरीर का दो-दो इंच मांस धुँए की तरह उड़ गया था-प्राण शरीर छोड़ने को छटपटा रहे थे । परंतु अपने आत्मबल से वह उन्हें रोके था । प्रबल संकल्प के आगे मौत सहम गई थी ।

जारक सफल हुआ । छावनी से कुमुक पहुँच गई । जापानी खदेड़ दिए गए । उसने देखा नायक को सुरक्षित बंधन खोले जाते हुए और मृत्यु को आज्ञा दे दी प्राण ले जाने की । वहाँ जहाँ शायद संयमराय ने आगे बढ़कर उसे कलेजे से लगा लिया होगा यहाँ तो उसके शरीर की अंत्येष्टि पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ हुई थी ।

श्रम देवता की आराधना ही जीवन की सच्ची साधना है

आ.....प ! दायें हाथ से गालों पर लुढ़क आए आँसुओं को पोंछने का प्रयास करते हुए उन तीनों महिलाओं के मुख से लगभग एक साथ यह शब्द निकला । आश्चर्य के आवेश में सिसकियाँ थमने लगी थीं । पास खड़े बच्चे भी उसे सूनी निगाहों से देख रहे थे । उनके आने की खबर सुनकर प्रातःकाल से ही मजदूरों की इस बस्ती में उथल-पुथल थी । ऐसा नहीं आज से पहले वह यहाँ आए नहीं हों । वे तो इन सभी के अपने थे । सबसे उनका सघन अपनत्व था । इसके बावजूद उनको इस रूप में कोई नहीं जानता था । नहीं भला इतना आश्चर्य क्यों ?

उनके यहाँ पर इस रूप में आने का कारण था-कोलंबिया स्टेट की एक एस्बेस्टस फैक्ट्री में दुर्घटना हो जाना । कुछ ही दिन पहले हुई इस घटना में तीन श्रमिकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा । श्रमिक दिन भर लोहे की दैत्य जैसी मशीनों के साथ जी झोंक कर काम करता है, तब कहीं परिवार की गाड़ी खीचता है । उसकी परिवार रूपी मोटर में उसके श्रम का ईंधन जलता है, तो वह चलती है ।

उन अकाल कवलित हुए श्रमिकों की पत्नियाँ उनके काम से लौटने की प्रतीक्षा कर रही थीं । बच्चे अपने आप को आश्वस्त कर रहे थे कि 'पापा' आने वाले

हैं, फिर सब मिलकर साथ खाना खायेंगे । उनके कान अपने पापा के जर्जर जूतों की चिर परिचित चरमराहट सुनने को आतुर थे । किंतु उन्हें उनके पिता के स्थान पर उनकी मृत्यु की हृदय बेध देने वाली सूचना मिली । क्रूर काल के एक झोंके ने उनकी दुनियाँ में अंधेरे की एक चादर तान कर रख दी । किनके समर्थ हाथ उनके आँसू पोंछने के लिए बढ़े ? कौन इन सबके प्राणों की आकुलता का शमन करे ।

इसी बीच इन सबने सुना कि स्वयं "अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक" उनके दुख सुनने आने वाले हैं । संवाद ने घाव पर मरहम लगाया । प्राणों का उफान एक बारगी थमा । विदीर्ण होता मन फिर से जुड़ने लगा । एक आशा बँधी, सहायता मिलेगी । दुधमुहों की धुँधली पड़ती आँखें एक बार फिर चमकेंगी । सोच रखा था जो अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का महानिदेशक है, कितना रौब-दाव होगा उसका ? कितनी शान-शौकत से रहता होगा ? रहे भी क्यों न ? बड़े-बड़े मिल मालिक, देश-विदेश के भारी-भरकम उद्योग समूहों के अध्यक्ष उनके सामने हाथ जोड़े होते होंगे । ऐसी ऊँची पद प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति........।

सामने आने पर आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था । अरे ! यही ! यह तो, वाणी थम सी गयी । जानती थी कि ये तो उन्हीं के पतियों के साथ फैक्ट्री में मजदूरी करते हैं । सामान्य मजदूर जिसे न तो प्रमोशन की परवाह है और न डिमोशन का भय । घर में कई बार आना-जाना भी हुआ था । हँसमुख स्वभाव । छः फीट का हट्टा-कट्टा गोरा शरीर । श्रम के प्रकाश से प्रदीप्त आँखें । सामान्य मजदूर और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का महानिदेशक । उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहें ? उस साधारण से मकान के बाहर के दृश्य को देखकर ऐसा लग रहा था कि जैसे समय थम गया । एक अपूर्व ठहराव.........।

"भाभी ! मुझे आने में कुछ देर हो गयी, क्षमा करना ।" संबोधन उन तीनों महिलाओं की ओर था । वाणी ने समय को गति दी, ठहराव भंग हुआ ।

"भाई साहब आप तो अपने हैं मैंने तो कुछ और सुना था ।" कहने वाली के नेत्रों से अभी आश्चर्य की चमक धुली नहीं थी ।

"इंटरनेशनल लेबर आर्गनाइजेशन के डाइरेक्टर जनरल" यही न । पास खड़े एक साथी ने मुस्कराते हुए कहा, ये यह भी हैं और वह भी ।

इसके अलावा कुछ और भी । एक अन्य सहकर्मी ने जिज्ञासा को कुरेदा ।

क्या ? सभी सुनने को उत्सुक थे । अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक के रूप में सामने खड़ा देखकर सभी की जिज्ञासा अकुला रही थी ।

"यहाँ के विश्वविद्यालय के वाद-विवाद दल के शीर्षस्थ वक्ता तथा फुटबाल टीम के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी ।"

"और वकील भी ।" पहले के रुकने से पहले दूसरा बोल पड़ा ।

याद है न न्यूजर्सी की ड्राईक्लीनिंग इंडस्ट्री का मुकदमा ।

"हाँ" इस एक अक्षर के साथ ही जानकार लोगों को याद आ गयी वह घटना जब मजदूरों के हितों को ध्यान में रखते हुए अमेरिका सरकार को श्रमिक कानून बनवाने पड़े थे । उन्होंने न्यूजर्सी की ड्राईक्लीनिंग इंडस्ट्री व न्यूयार्क के दुग्ध उद्योग के श्रमिकों के हित के लिए बिना फीस पैरवी की थी ।

अनेक विभूतियों का स्वामी, उच्चतम प्रतिभा से सम्पन्न रहने पर भी यह युवक साधारण मजदूर क्यों ? इस प्रश्न ने सभी के मन को स्तब्ध कर दिया । इन महिलाओं को अपना दुःख भूल गया । वे सोचने लगी कि प्रायः जो व्यक्ति साधारण श्रमिकों के रूप में श्रमिकों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर आंदोलन करता है, उन्हें संगठित करता है, पर जब वह संघ शक्ति के सहारे उच्च पद पर आसीन हो जाता है तो उसको धन से, पद से एक मोह सा हो जाता है । ऐसी दशा में वह बड़ा बन जाने पर खजूर के पेड़ की तरह छाया और फल की दृष्टि से जन सामान्य की पहुँच से दूर हो जाता है, अति दूर । पर यह अनेक आँखें इस सामने खड़े मुस्करा रहे व्यक्ति में कुछ ढूँढ़ने की कोशिश करने लगीं ।

इतना सब होते हुए भी आप मजदूर क्यों हैं ? मन के मंथन से उभरी जिज्ञासा को प्रकट होने से रोका न जा सका ।

मजदूरी मेरा बोझ नहीं, शान है । होठों पर तैरती मुस्कान की रेखा ने अनेकों के अंतर को छुआ है । तनिक रुक कर वह बोले-"जीवन के मंदिर में मैंने श्रम देवता की प्रतिष्ठा की है ।"

"श्रम देवता की प्रतिष्ठा ! श्रम और देवता !!" समझ पाने का असफल प्रयत्न करते हुए अनेक मुखों से बुदबुदाहट उभरी ।

"हाँ, श्रम देवता है ।" कथन में दृढ़ता थी, अनुभव जन्य विश्वास था और उसकी आराधना का स्पष्ट आवाहन । "विभिन्न धर्मों में अनेक देवी-देवताओं के

नाम तो सुने हैं, पर यह एक नया देवता "-किसी ने धीरे-धीरे कहा ।

"नया नहीं चिर प्राचीन है"-वह मुस्काये, आस-पास खड़े लोगों की ओर देखते हुए बोले-"मानव ने अनादिकाल से इसकी आराधना की है । आज जो कुछ भी प्रगति, उन्नति, अच्छाई, विकास दीख रहा है, सब कुछ इसी की आराधना का सुफल है ।"

सभी मौन थे । कोई कुछ कहता भी क्या ? प्रत्यक्ष को भी क्या कभी प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है ? श्रम देवता का अनुग्रह भाजन सामने जो खड़ा था । कुछ मिनट यों ही बीत गए फिर वह संवेदनशील स्वर में बोला-"क्षमा कीजिए, मैं भी कहाँ अटक गया । आया था आपकी व्यथा को बँटाने और शुरू हो गयीं यह सब बातें । आप जो भी सहायता चाहें शीघ्र भिजवा दूँगा ।"

"सहायता हो गयी भैया !" उसमें से एक महिला ने स्वस्थ चित्त हो कहा ।

"कहाँ अभी तो.......।"

आपने जो अभी 'श्रम देवता की प्रतिष्ठा' करने की बात सुझाई वह किस सहायता से कम है । जब ईश्वर का दिया स्वस्थ शरीर और सबल मन हमारे पास है तब कैसी सहायता ?

"ओह !"

एक संशय था सो भी दूर हुआ । अभी तक सोचती थी कि श्रमशील निकृष्ट होते हैं और श्रम न करने वाले उत्कृष्ट ।

"पर अब"-खिलखिलाहट के साथ प्रश्न उभरा ।

सोच उलट गयी ।

"अच्छा !" तनिक आश्चर्य व्यक्त करते हुए उसने कहा-"सच कहें तो हम भविष्य में जीवित जीते हैं । आप सब विश्वास मानिये जब जीवन मंदिर में अनिवार्य प्रतिष्ठा योग्य एक ही देवता होगा-श्रम । बात पूरी करने के साथ ही उसने घड़ी देखी, पास खड़े बच्चों के गाल थपथपाये । उन महिलाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर आने का वायदा करके चल पड़े । श्रम देवता के यह एक निष्ठ आराधक जो ७९ देशों के सम्मिलित अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिदेशक होकर भी कोलंबिया की फैक्ट्री में मजदूरी करते रहे-डेविड मोर्स थे ।

प्रगति का मार्ग सबके लिए खुला

मस्तिष्क महत्वपूर्ण तो है पर अन्य अवयवों की तरह एक अंग ही । प्रयत्न करने पर समस्त शरीर को या उसके किस अंश को अधिक बलवान बनाया जा सकता है । उसी प्रकार मस्तिष्कीय विकास भी उस संदर्भ में किए गए प्रयत्न पुरुषार्थ पर निर्भर है ।

लुहार का दाहिना हाथ अपेक्षाकृत अधिक मजबूत होता है, क्योंकि अधिक सक्रियता के कारण उसकी क्षमता बढ़ी हुई रहती है । पैदल चलने के अभ्यासी अंगों में उनकी रगें मजबूत पाई जाती हैं । बांसुरी बजाने वालों के गलफड़े-फेफड़े दूसरे लोगों की तुलना में अधिक पुष्ट होते हैं ।

दुर्बल शरीर वाले कितने ही लोगों को व्यायाम, आहार-विहार, नियम-संयम पालन करके अपने को उच्च श्रेणी का बलवान पहलवान बना लिया विश्वविख्यात, 'सेंडों' पहलवान बचपन में बहुत दुर्बल तथा प्राय: बीमार रहता था । भारत के 'हिंद केशरी' पहलवान चंदगीराम २१ वर्ष की उम्र तक जुकाम आदि रोगों से ग्रसित बने रहे । इन लोगों ने जब अपना ध्यान शारीरिक बल-वृद्धि पर सक्रिय किया और बलवृद्धि के प्रयत्नों में लग गए तो फिर कायाकल्प ही प्रस्तुत हो गया । ऐसे असंख्य उदाहरण संसार में भरे पड़े हैं जो मनुष्य की उत्कट इच्छा, एकाग्रता, लगन और तत्परता के समन्वय से विभिन्न क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । मस्तिष्कीय शक्ति स्मरण शक्ति की अभिवृद्धि का भी एक ऐसा ही उदाहरण इंग्लैंड का है ।

इंग्लैंड के कैंट कस्बे में जन्मा 'दातम' स्मरण शक्ति का धनी था । एक अति निर्धन मोची परिवार में वह जन्मा, वह पैदा होने के दिन से ही बीमार रहा । दुबला इतना था कि ग्यारह वर्ष की उम्र में पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी ।

इस घोर निराशा की स्थिति में उसने मनोरंजन का एक शौक बढ़ाया वह इधर-उधर की बातें याद कर लेता और उनका स्थान, समय, घटनाक्रम आदि का ठीक विवरण बताकर लोगों पर अपनी स्मरणशक्ति का रौब जमाता । इस मनोरंजन और कौतूहल से लोग बहुत प्रभावित होते और 'दातम' में कुछ अलौकिकता बताते हुए सराहते ।

उसका यह शौक बढ़ता गया । सारा ध्यान उसने स्मरण शक्ति बढ़ाने पर केंद्रित किया । जो देखता, पढ़ता, सुनता उस पर पूरा ध्यान देता, मन ही मन उसे कई बार दुहराता और उसके कल्पना चित्र मन की परतों पर कस कर जमाता । वे भली प्रकार याद हो जाते और मुद्दतों याद रहते ।

अब तो वह स्मृति का धनी ज्ञान के विश्वकोष के रूप में समझा जाने लगा । वह लोगों को आश्चर्यचकित करके यश ही नहीं धन भी कमाने लगा ।

यूरोप के प्रभाव युक्त ज्योतिषियों, राजनीतिज्ञों, बड़े आदमियों ने उससे भेंट की तथा ऐसे अप्रत्याशित घटनाक्रमों के विवरण पूछे जिन्हें स्मृति के गर्त में गुम गए ही समझा जा सकता था । पर उसने उन तथ्यों को सिललिलेबार सन्, तारीख, समय सहित इस प्रकार बताया कि पूछने वालों को आश्चर्यचकित ही रह जाना पड़ा ।

वह दातम के नाम से विख्यात था, पर असली नाम था, डब्ल्यू० जे० एम० ब्राटन । पीछे वह ब्रिक्सटल हिल पर रहने लगा था । ७१ वर्ष की उम्र में भी उसकी स्मृरण शक्ति यथावत बनी रही । अमेरिका के एक स्वास्थ्य संस्थान मृत्यु के उपरांत उसका सिर ३० हजार रुपये में खरीदा गया ताकि उसकी मस्तिष्कीय विलक्षणताओं का अतिरिक्त अध्ययन किया जा सके ।

'दातम' के पास कोई चमत्कार नहीं था । न वह जन्मजात कुछ विलक्षण प्रतिभा ही साथ लाया था । फिर भी वह अपने इच्छित क्षेत्र में आश्चर्यजनक व्यक्ति माना गया । इसका कारण और कुछ नहीं उसकी इच्छा शक्ति का केंद्रीकरण तथा पूरी तत्परता के साथ निरंतर प्रयत्नशील रहना ही वह आधार था जिससे उसने यह उपलब्धि प्राप्त की । दूसरों के लिए भी किसी क्षेत्र में आगे बढ़ने का मार्ग दातम की तरह खुला है ।

जीवन विद्या के आचार्य

वे अतिथियों को अपने ड्राइंग रूम में लगे चित्रों को दिखा रहे थे-"यह भगवान राम, भगवान कृष्ण, महात्मा बुद्ध, प्रभु ईसा, पवित्र कुरान के वचन.........।" आगंतुक विभिन्न धर्मों के महापुरुषों का संगम एक स्थान पर देखकर चकित थे कि अतिथेय ने एक भव्य चित्र के सम्मुख नमन करके कहा-"ये हैं मेरे गुरुदेव रामचंद्र दत्तात्रेय रानाडे। इन्हीं की कृपा से मैं धर्म का मर्म समझ सका हूँ।"

"क्या है धर्म का मर्म ?"-अतिथियों के मुँह से एक साथ निकला।

वही बता रहा हूँ, गृह स्वामी ने बड़ी विनम्रता से कहा। प्रथम बार जब मैं उनसे मिला और धर्म के बारे में जानने की जिज्ञासा की, इस पर उन्होंने कहा-"ईसा के कथन को ईसाई बनकर नहीं, ईसा बनकर ही जानना संभव है। बौद्ध बनकर बुद्ध की पहचान नहीं होगी यह तो बुद्ध बनने पर ही ठीक से संभव है। जीवन का एक पक्ष नहीं, वरन् समग्र जीवन ही धर्ममय बनाना पड़ेगा।" उनकी ये अटपटी बातें मेरी समझ में नहीं आयीं। मैंने प्रार्थना की-कृपया साफ-साफ कहें।

इस निवेदन के उत्तर में उन्होंने कहा-"बताने से नहीं करने से समझोगे। धर्म एक जीवनव्यापी प्रयोग है। इसे संपन्न किए बिना मर्म कैसे पता चलेगा।"

"करना क्या होगा ?"-मेरा अगला प्रश्न था। "चिंतन के स्तर पर सर्वव्यापी एकता, चरित्र में नैतिकता और व्यवहार में उदार आत्मीयता का समावेश करना होगा। ये तीनों सेवा के रूप में एकीकृत होंगे। यही इन सबका स्थूल रूप है। यों परम सत्ता सर्वत्र है, पर मंदिरों में उसकी अनुभूति सघन होती है। ठीक उसी प्रकार जैसे विद्युत सर्वत्र है, पर बल्व के प्रकाश में उसकी अनुभूति सहज है। भगवान के मंदिर हैं मनुष्य। इनके देवत्व को उभारना ही पूजा है, सेवा है। बस तब से मैं यही कर रहा हूँ।"

मानवी काया को मंदिर मान, इसमें निहित देवत्व को उभारने वाले ये गृहस्वामी थे-डॉ० क्रिश्चन। उनके अनुसार धर्म का मर्म था, मनुष्य में देवत्व का उदय। अपना सारा जीवन उन्होंने इसी में कार्य में लगाया। दुखियों व गरीबों को देखकर उनके हृदय में करुणा का सागर उफन पड़ता था। वह कहते-बुखार से तपती देह को आराम पहुँचाने, घावों पर मरहम लगाने भर से मेरा काम पूरा नहीं हो

जाता है । चिकित्सा तो मेरे लिए माध्यम है, जिसके माध्यम से मैं अनेक से सघन आत्मीयता जोड़ता हूँ । उन्हें जीवन जीने की राह सिखाता हूँ ।

औरंगाबाद स्थित इस अनूठे क्लीनिक का संचालन करने वाले डॉ० क्रिश्चन जीवन विद्या के आचार्य के रूप में जाने लगे । लोगों ने उन्हें प्यार से मसीहा कहा ।

यद्यपि अब वह इस संसार में नहीं हैं । तथापि महाराष्ट्र के औरंगाबाद शहर में सर्व धर्म समन्वय ज्योति मंदिर अभी भी धर्म और धार्मिकता के रहस्य को सुझा रहा है ।

श्रेष्ठ कार्य के लिए मुहूर्त की क्या आवश्यकता ?

ईरान के शाह अब्बास अपने राज्य को समुन्नत बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे । उन्होंने राजधानी के मध्य एक सुंदर पार्क लगाने की योजना बनाई । उनका उद्देश्य यह था कि घनी बस्ती के मध्य लोगों को स्वच्छ वायु मिल सकेगी और बच्चे, बूढ़े सभी सुबह-शाम टहलने तथा प्रकृति का आनंद लेने आ सकेंगे ।

राज पुरोहित को जब यह पता चला कि शाह ने बिना शुभ मुहूर्त पूछे तथा परामर्श लिए यह योजना बना ली है तो उसे बहुत बुरा लगा । वह शाह की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन किया-"राज्य की जनता आपकी योजनाओं का स्वागत करती है पर यदि आपने बिना शुभ मुहूर्त के पार्क लगवाया तो पौधों के बढ़ने की बात तो दूर उसमें घास तक न उगेगी ।"

शाह घबरा गए । उन्होंने कहा-"अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है केवल योजना ही बनाई है । जमीन तय की गई है और उसके चारों ओर दीवार बनाने का काम शुरू हुआ है ।"

पुरोहित ने सूरज डूबने से पहले पौध लगाने की सलाह दी और कहा- "शाह ! यदि आपने मुहूर्त से काम किया तो पौधे खूब बढ़ेंगे और कयामत की आँधी भी उनका कुछ न बिगाड़ सकेगी ।"

शाह ने वस्तुस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया । सूर्यास्त का समय निकट

आ गया । शाह ने बागवान की भी प्रतीक्षा न की, एक नौकर की सहायता से स्वयं ही पौधे रोप दिए । दूसरे दिन सुबह बागवान आया । उसने देखा कि बिना किसी योजना के पौधे लगे हुए हैं । कुछ पौधे पास-पास हैं और कुछ की दूरी आवश्यकता से अधिक है । उसने झुँझला कर पौधे उखाड़ डाले ओर अपने ढंग से लगा दिए ।

राज पुरोहित को यह पता चला तो उसने अपना अपमान समझकर शाह के खूब कान भरे । झूठी-सच्ची बातें मिलाकर कहीं । बदला लेने का उसने अच्छा अवसर समझा । बागवान को राज-दरवार में उपस्थित होना पड़ा । पुरोहित पहले से ही आग-बबूला था । शाह का रुख अपनी ओर अनुकूल जानकर पुरोहित ने बागवान को डाँटते हुए कहा-"मूर्ख ! क्या तुझे यह भी नहीं मालूम कि यह पौधे शाह के हाथों द्वारा शुभ मुहूर्त में लगाए गए थे फिर तुमने इन पौधों को उखाड़ने का दु:साहस कैसे किया ?"

बागवान डर गया । क्योंकि सचमुच उससे अनजाने में यह गल्ती हुई थी । पर उसे नहीं मालूम था कि शाह ने जल्दबाजी में यह पौधे लगाये हैं । वह एक क्षण के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया पर दूसरे ही क्षण साहस बटोरकर पुरोहित से कहा- "मैं तो यह पूछना चाहता हूँ कि यदि तुमने इन पौधों को ऐसे मुहूर्त में लगवाया था कि कयामत की आँधी न उखाड़ सके, फिर क्षण भर में यह भूमि से कैसे अलग हो गए ? मैं कयामत से अधिक शक्तिशाली तो नहीं हूँ ।"

बागवान के इस तर्क ने शाह के मन को मोह लिया पर पुरोहित की ऐसी स्थिति हो गई कि वह अपने मुँह से एक भी बात न कह सका ।

वह नहीं जानता कि खुदा ने उसे क्यों पैदा किया ?

मुगलिया सल्तनत के समय सुल्तान महमूद का दरबार कवियों और कलाकारों के लिए अच्छा शरण स्थल बना हुआ था । उन दिनों प्राय: प्रत्येक राजा-महाराजा अपने दरबार में कवि रखा करते थे, जो उनके शौर्य, पराकक्रम और उदारता की मनगढ़ंत कहानियाँ गढ़ कर, गीत बना कर गाया करते । राजा-महाराजा अपने

प्रशस्ति गीत सुनकर बड़े प्रसन्न होते और कवियों को पुरस्कार भी देते । एक प्रकार से यह व्यवसाय ही बन गया था ।

सुल्तान महमूद के प्रसिद्ध राज दरबार में भी एक शायर थे, जिनका नाम था-सनाई । सनाई उच्चकोटि के शेर और गजलें लिखते परंतु वे होतीं सब सुल्तान की प्रशंसा में । प्राय: ही वे सुल्तान की प्रशंसा में नये नये शेर रचते, गजलें लिखते और राज दरबार में गा कर सुनाते । इसके बदले में उन्हें पुरस्कार भी खूब मिलता और सम्मान भी । प्रतिष्ठा और पुरस्कार ने उन्हें गर्वोन्नत भी कर दिया था ।

एक बार की घटना है । उन्होंने सुल्तान की प्रशंसा में कुछ शेर लिखे । उन्हें सुनाने के लिए वे राजदरबार की ओर चले । मार्ग में एक मदिरालय था, उसमें कोई शराबी मद्य पी रहा था । प्राय: ही लोग वहाँ शराब पीते उनका ध्यान कदाचित ही उस ओर जाता । उस दिन उनके पैर अनायास ही ठिठक गए । कारण था अंदर से कुछ आवाज आ रही थी । कोई पियक्कड़ साथी से कह रहा था-"सुल्तान महमूद के अंधेपन की गमजोई में ला एक पैग दे ।"

"बेवकूफ"-साकी कह रहा था-"कोई सुन लेगा तो तेरा सर सीधा कलम हो जायगा । क्यों अपनी मौत को दावत दे रहा है ।"

"मौत को दावत नहीं सच बात कह रहा हूँ । इसमें बेजा क्या है ? सुल्तान अंधा नहीं तो क्या है ?"

"अंधेपन की क्या निशानी देखी तूने सुल्तान में ।"

"बहुत कुछ देखी है"-पीने वाले ने कहा-"सुल्तान के पास सुख से रहने के लिए किसी बात की कमी नहीं । उसके पास धन है, दौलत है फिर उसे कुछ दिखाई नहीं देता । जो चीजें उसके पास हैं उन्हें ही और बटोरने के लिए वह पड़ोसी राज्यों पर हमले करता है । वहां लूटमार मचाता है । हजारों बेगुनाहों को मौत के घाट उतारता है । यह अंधापन नहीं तो क्या है ?" इतना सुनकर साकी ने पीने वाले के पैमाने में शराब उडेली ।

सनाई वहीं खड़े रहे, कुछ विचारने लगे । अंदर से फिर वही आवाज आयी-"ला, एक और जाम दे । सनाई की बेवकूफी पर ।"

अब तो साकी को चिढ़ सी आ गयी । सनाई के कान भी खड़े हो गए, ध्यान से सुनने के लिए । साकी कह रहा था-"तुमने यह क्या बकवास लगा रखी है ।

सनाई जैसे उम्दा शायर के लिए तुम्हें यह बोलते शर्म नहीं आती ।"

"मानता हूँ दोस्त, सनाई बहुत उम्दा शायर है"-पीने वाला कह रहा था- "परंतु उस सा बेवकूफ भी दुनिया में खोजे नहीं मिलेगा । वह कागज को रंगता भर है जबकि मालिक ने उसे बहुत बड़ा हुनर दिया । वह नहीं जानता कि खुदा ने उसे क्यों पैदा किया और वह उसकी दी हुई काबिलियत को अंधे सुल्तान की तारीफ करने में ही खर्च कर रहा है ।"

शराबी की इन बातों को सुनकर, जिसे शाकी निरी बकवास ही समझ रहा था, सनाई की आँखें खुल गयीं । उनके हृदय में जैसे तीर से चुभने लगे हों । और वे उल्टे पाँव आये वापस अपने घर । सुल्तान की प्रशंसा में उन्होंने जो नये शैर तैयार किये थे रास्ते में ही फाड़कर फेंक दिए । बहुत देर तक ही नहीं दो चार दिनों तक जब सनाई दरबार में नहीं आये तो सुल्तान ने खबर पुछवाई । संदेश वाहकों ने वापस आकर जो कुछ कहा, उसने सभी को सकते में ला दिया था कि सनाई घर पर नहीं है । बाद में पता चला कि सनाई अमुक स्थान पर फकीर के वेश में रूहानी (आध्यात्मिक) गीत गाते देखे गए हैं ।

मरने पर केवल लुकारी ही मिलेगी

उसका नाम गुलिक था । वह व्याध था । पशु-पक्षियों का ही व्याध नहीं, वह मनुष्यों का भी व्याध था । हिंसा एवं लूट-पाट ही उसके व्यसन एवं व्यवसाय थे । वह इतना निर्दयी और अकरुण था कि लोग उसका नाम सुनते ही काँपने लगते थे । नित्य प्रति लोगों को लूटना और मारना उसका स्वाभावगत पेशा था । इसी के आधार पर उसकी और उसके परिवार की आजीविका चलती थी ।

संयोगवश एक दिन उसे कोई शिकार न मिल सका । सबेरे से शाम तक वह शिकार की घात में घूमता रहा । किंतु निराशा के सिवाय उसके हाथ कुछ न लगा । निराशा, भूख और परिवार की चिंता ने उसे इतना व्यग्र कर दिया कि वह बस्ती की ओर चल दिया । वह बस्ती से कुछ दूर स्थित एक मंदिर के समीप पहुँचा और दूर से अनुमान लगा लिया कि इस स्थान पर अर्थ सिद्धि हो सकती है । किंतु उस

समय उस मंदिर में अनेक व्यक्ति मौजूद थे, इसलिए अवसर न देखकर वह रात होने तक के लिए वापस चला गया ।

उस मंदिर के अधिष्ठाता एक वयोवृद्ध बाबाजी थे, नाम था सत्यजित । वे अपने सद्व्यवहार, संयम-नियम, उदारता और ज्ञान के लिए उस जनपद में प्रसिद्ध थे । वे लोगों का दुःख दूर करने और उनकी सहायता करने में सदा तत्पर रहते थे । लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा से देखते थे । दूर-दूर से लोग उनका सत्संग करने आते थे और अन्न, वस्त्र, दूध, दही और धन आदि, जो जिसके यहाँ होता था, दे जाते थे । सत्यजित को किसी बात की कमी न थी । किंतु वे पाई हुई सामग्री का अधिकांश भाग अतिथियों, गरीबों, यात्रियों और आवश्यकताग्रस्त लोगों की सहायता में लगा देते थे । वे बड़े त्यागी और उदार प्रवृत्ति के थे ।

संध्या गहरी होने लगी । बाबा ने सत्संग समाप्त करके शृंगार-आरती की और आगंतुकों को प्रसाद देकर बिदा कर दिया । वे सदा ध्यान रखते थे कि आए हुए लोगों को ज्यादा देर न हो जाए । क्योंकि तब मार्ग में गुलिक के आक्रमण का डर हो जाता था । गुलिक व्याध व्याघ्र से भी अधिक सांघातिक है-यह बात सत्यजित अच्छी तरह जानते थे ।

देवता की शयन-सेवा के बाद सत्यजित मंदिर बंद करके अपने आसन पर बैठकर ध्यान मग्न हो गए । आज वे अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ विशेष अनुभव कर रहे थे । उनका हृदय आज कुछ अधिक आर्द्र होकर भगवान के चरणों में तन्मय हो रहा था । कारण की चिंता से निरपेक्ष वे भजन का आनंद ले रहे थे । तभी बाहर दरवाजे पर थाप लगी । वह एक बार ध्यान देकर फिर भजन में डूब गए ।

अबकी बार थपथपाहट के साथ एक कर्कश आवाज भी थी -"दरवाजा खोलिए ।" "कौन है भाई ?"-बाबा ने पूछा । "एक भूखा यात्री ।"-उत्तर आया । "एक भूखा यात्री !"-मन ही मन दोहराते हुए पुजारी बाबा ने उठ कर सांकल खोल दी और कहा-"आ जाइए, अंदर आ जाइए ।" "आप न भी कहते तब भी मैं बाहर न खड़ा रहता"-कहते हुए कठोर अवयव वाले उस भयानक दस्यु ने हाथ में परशु लिए लिए मंदिर में प्रवेश किया ।

"सत्यजित ने देखा और कहा-"गुलिक !" "हाँ ! गुलिक ही नहीं गुलिक व्याध । इस प्रांत का व्याघ्र गुलिक"-कहते हुए उसने बाबा की गर्दन पकड़कर

गिरा दिया और उनकी छाती पर चढ़कर कमर से कटार निकाल ली । किंतु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पुजारी बाबा भयभीत होने के स्थान पर हँस रहे हैं । उनके मुख पर किसी प्रकार की विकृति का कोई चिह्न नहीं है । उनका मुख एक विलक्षण तेज से चमक रहा है । यह उसके लिए एक सर्वथा नया और आश्चर्यजनक दृश्य था । उसकी उठी हुई कटार नीची हो गई ।

गुलिक ने प्रभावित वाणी में पूछा-"बाबा, मौत के मुख में पड़े हुए भी तुम हँस रहे हो । जिस स्थिति में लोग बिना मारे ही मर जाते हैं, उस स्थिति में तुम्हारी यह निर्भयता मुझे इसका कारण जानने के लिए उत्सुक कर रही है । अब मैं इसका कारण जानकर ही तुम्हारी हत्या करूँगा ।"

बाबा ने हँसते हुए पूछा-"पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम मेरी हत्या क्यों करना चाहते हो ?" "आज सबेरे से मैं और मेरा परिवार भूखा है । मुझे कहीं कोई शिकार नहीं मिला है । इसलिए आपको लूटने का निश्चय किया है"-गुलिक ने अपना मंतव्य बतलाया । बाबा ने कहा-"इसके लिए मुझे मारने और लूटने की क्या आवश्यकता है । तुम्हें जिस वस्तु की आवश्यकता हो वैसे ही ले जा सकते हो । यह द्वार तो सबके लिए सदा समान रूप से खुला हुआ है ।"

गुलिक ने कहा-"मैं किसी का दिया हुआ नहीं लेता, मैं तो अपने पराक्रम से कमाया हुआ भोजन स्वीकार करता हूँ और बिना कमी किसी की कोई वस्तु नहीं लेता, यह मेरा नियम है । अब जल्दी ही मुझे अपनी इस निर्भय हँसी का रहस्य बतलाइये, जिससे मैं अविलंब अपना काम पूरा करूँ ।"

"क्या तुम्हारे माता-पिता, भाई-बंधु जीवित हैं ?"-बाबा ने पूछा । "नहीं, वे सब कब के मर चुके हैं"-गुलिक ने उत्तर दिया । "उनके मरने पर तूने या तेरे संबंधियों ने क्या किया ?"-बाबा ने फिर पूछा । "मरने के बाद उन्हें श्मशान में जलाया गया । चिता पर रखकर एक लुकारी से उनका मुँह झुलसाया गया । और चिता में आग लगा उन्हें जला दिया गया । अंत में श्राद्ध आदि हुआ और कुटुंब के लोगों को भोज दिया गया । सबने प्रीतिपूर्वक पूड़ी-पकवान और मिठाई खाकर मृक्या तक के परिवार को पवित्र किया । बस यही सब हुआ और किया गया"-गुलिक ने पूरी कहानी सुना दी ।

"सत्यजित ने मुस्कराते हुए कहा कि बस, इसी में मेरी हँसी का रहस्य छिपा

हुआ है । इसी प्रकार जब तुम भी मृत्यु के अतिथि बनकर इस संसार से बिदा होगे तब तुम्हें भी केवल लुकारी ही मिलेगी और तुम्हारे नाम पर लोग पूड़ी-पकवान और मिष्ठान्न आदि खायेंगे । तब तुम, पता नहीं, इस नि:सार एवं नश्वर जीवन में यह पाप क्यों कमा रहे हो । तुम्हारी इसी अबोधता को सोच-सोचकर मुझे हँसी आ रही है ।''-बाबा ने अपनी बात समाप्त कर दी ।

गुलिक के हाथ की कटार गिर गई । वह पुजारी बाबा की छाती से उतर कर उनके चरणों में लिपटकर रोता हुआ बोला-''बाबा ! अवश्य ही अंत में मुझे लुकारी ही मिलेगी । आपने मेरी आँखें खोल दीं । अब मैं कभी ऐसा पाप न करूँगा । आप मुझे पिछले पापों से छूटने का उपाय बतला दें ।'' बाबा ने उसे हृदय से लगाकर धीरज बँधाया और कहा-''गुलिक, तुम्हारे इन पश्चाताप के आँसुओं से ही तुम्हारे पिछले पापों का प्रायश्चित हो गया । अब तू निष्पाप है । क्रूर कर्मों को छोड़कर दया और सहानुभूतिपूर्वक दीन-दुखियों और निर्बलों की सेवा-सहायता कर, तुझे शाश्वत शांति मिलेगी ।''

गुलि ने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र नदी में बहा दिए और उसी दिन से सत्यजित के निर्देशानुसार सदाचरण में रत होकर एक संत का जीवन व्यतीत करने लगा । कुसंयोग से भी हुए एक सच्चे संत के समागम ने गुलिक जैसे दुर्दांत दानव को सच्चा मानव बनाकर अपना प्रभाव प्रमाणित कर दिया । धन्य है संत-समागम !

प्रोत्साहन के अनुपम चमत्कार

अलबामा स्टेट के सौ हेक्टर के कपास फार्म तक ही उसकी दुनिया सीमित थी । सात वर्ष के इस हब्शी बालक ने अपने मालिक जान केनन के अतिरिक्त किसी गोरे व्यक्ति को नहीं देखा था । जो इस खेत का मालिक था तथा अपने आठ हब्शी दास परिवारों का भी जो उसके खेत पर काम करते थे ।

यह बालक इतना कमजोर था कि उसकी एक एक हड्डी गिनी जा सकती थी । अपने अन्य चार भाइयों की तरह वह पिता की सहायता भी नहीं कर पाता था । वह प्राय: बीमार रहता तथा जाड़े में प्राय: निमोनिया से पीड़ित होकर लकड़ी व गत्तों की झोंपड़ी में पड़ा रहता था ।

उसके पिता को अपने पुत्र का दर्द तो था और वह चाहता था कि अपने परिवार को कम ठंडे प्रदेशों में ले जाय ताकि बालक जैसी को स्वास्थ्य लाभ हो किंतु ग़रीबी तथा हब्शियों के साथ किए जाने वाले अमानुषिक व्यवहार के कारण ऐसा नहीं कर पाता था ।

अंत में पुत्र स्नेह की विजय हुई तथा वह अपने परिवार सहित क्लीवलैंड चले आये । यहाँ उसके पिता तथा भाइयों को स्टील मिल में काम मिल गया । जेसी ओवेंस, जो अब आठ वर्ष का हो चला था, पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया ।

अमेरिका में काले हब्शियों के साथ उस समय पशुओं से भी गया-गुजरा व्यवहार किया जाता था । उनकी हर सांस पर उनके मालिक गोरे व्यक्ति का अधिकार होता था । उनको नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता था । किंतु सभी गोरे एक से नहीं थे । उनमें भी कइयों का हृदय मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत था और इन हब्शियों को अपने जैसा ही मनुष्य समझते थे । ऐसे ही एक सज्जन थे जेसी ओवेंस की पाठशाला के शारीरिक शिक्षा देने वाले अध्यापक-चार्ल्स रिले ।

इस शरीर शास्त्री को इस दुबले-पतले लकड़ी जैसी टांगों वाले बालक में ऐसे अंकुर दिखाई दिए कि उसे उचित मार्गदर्शन मिले तथा वह अभ्यास करे तो एक अच्छा धावक बन सकता है ।

जेसी यद्यपि अब पहले की तरह अस्वस्थ नहीं रहता था । उसकी शारीरिक शक्ति भी बढ़ी थी फिर भी उसको देखकर ऐसा लगता था कि अभी-अभी लंबी अस्वस्थता भोगकर उठा हो ।

अध्यापक रिले ने उससे कहा-"तुम यदि पूरी तरह अभ्यास करो तो तुम एक अच्छे धावक बन सकते हो । यही नहीं एक दिन विश्व चेंपियन भी बन सकते हो ।"

ओवेंस को अपने गोरे अध्यापक के कथन पर विश्वास नहीं हुआ । उसने गोरे लोगों की आँखों में अपने प्रति घृणा के भाव ही देखे थे । उसे रिले महाशय की यह उदारता भरी बात आश्चर्यजनक लगी । अपने दुबले-पतले शरीर को देखते हुए उसे उनका यह कथन और भी हास्यास्पद लगा ।

उसने स्कूल समय के बाद नौकरी करने का बहाना बनाया । श्री रिले ने उसे स्कूल समय से पहले आ जाने की बात कही । वह अध्यापक की बात को

अस्वीकार कैसे कर सकता था। उसे 'हाँ' कहनी ही पड़ी।

इस सहृदय अध्यापक ने जेसी को विश्व विख्यात खिलाड़ी बनाने के लिए कमर कस ली थी। पाठशाला लगने के एक घंटे पहले वे उसे स्कूल के खेल के मैदान में मिलते। आरंभ के कुछ दिनों तक वह उसके लिए पौष्टिक भोजन लाते तथा स्नेह से उसे अपने सामने बिठाकर खिलाते। उनका पितृवत स्नेह पाकर जेसी का सूखा-मुर्झाया शरीर खिलने लगा। उसकी उभरी हुई अस्थियों पर मांस चढ़ने लगा। उसे जाति तथा वर्णगत घृणा का शिकार होने से बचाने में भी उनका पूरा-पूरा सहयोग रहा।

उन्होंने उसे अभ्यास के तरीके बताये, अपने सामने अभ्यास भी कराया। उसके लिए पौष्टिक आहार की व्यवस्था भी की। जेसी जब कभी निराश होता, वे उसे धीरज बँधाते थे। उसके स्वास्थ्य में सुधार अवश्य हुआ था फिर भी उसकी टाँगें वैसी ही लकड़ी जैसी थीं। वह उन्हें देखकर साहस खो बैठता था। किंतु उसको श्री रिले का प्रोत्साहन मिलता रहता था तथा उसकी प्रगति होती रहती थी।

जेसी अब हायर सेकेंडरी स्कूल में आ गया था। उसका अभ्यास बराबर चल रहा था। श्री रिले को अपने स्वप्न साकार होते दीखने लगे थे।

जिस बालक ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि वह विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त कर सकेगा, उसी जेसी ओवेंस ने १९३३ में, जब वह हायर सेकेंडरी स्कूल में पढ़ता था, दौड़ने के विश्व कीर्तिमान ९.४ सेकंड को पा लिया था।

इस अल्पायु में इतने दुबले-पतले शरीर के किशोर की यह सफलता वस्तुतः श्री रिले के प्रोत्साहन का ही शुभ परिणाम थी।

अगस्त सन् १९३६। बर्लिन के क्रीड़ांगण में ओलंपिक खेल प्रतियोगिताओं का भव्य आयोजन हिटलर ने अपूर्व उत्साह से आयोजित किया। हिटलर उन दिनों विश्वाकाश में धूमकेतु सा चमकने लगा था।

यों आलंपिक खेलों में पहले भी अफ्रीकी मूल के काले हब्शियों ने भाग लिया था। उनमें से कई ने पदक भी जीते थे। किंतु इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले प्रतियोगी जेसी ओवेंस से अमेरिका को चार पदक जीतने की आशा थी।

हिटलर को अपने गौर वर्ण तथा आर्य मूल का बड़ा गर्व था। काले हब्शी उसकी दृष्टि में पशुओं के समान थे। वह अपने देश के श्रेष्ठतम खिलाड़ी लुट्ज

लोंग को जोर देकर जेसी ओवेंस को हराने की कह रहा था ।

वास्तविक प्रतियोगिता के पहले योग्यता की परीक्षा ली जाती है । लंबी कूद में जेसी ओवेंस तथा लुट्स लोंग की कड़ी स्पर्धा होने वाली थी । हिटलर का प्रयास तो यह था कि वह जेसी ओवेंस को योग्यता की स्पर्धा में ही अयोग्य घोषित करा दे ।

जिस दिन यह योग्यता परखने वाली स्पर्धा रखी गई वह स्वयं वहाँ उपस्थित था । पहले जर्मन खिलाड़ी लुट्ज लोंग कूदा वह पहली बार ही विश्व की कीर्तिमान से अधिक कूद गया । अब काले खिलाड़ी जेसी ओवेंस की बारी थी । हिटलर अपने बाक्स में से उठा तथा घृणा से उफनता हुआ वह मैदान में आ पहुँचा ।

जेसी ओवेंस पर उसकी घृणा तथा बौखलाहट का समुचित प्रभाव पड़ा । उसके रक्त, मांस में से जो हीनता के संस्कार जम गए थे वे उसे कमजोर करने लगे । उसकी जाति को सदियों तक दास प्रथा का भार उठाना पड़ा था । वह किसी प्रकार हिम्मत बाँधकर कूदा किंतु हड़बड़ी में वह गलत ढंग से कूद गया तथा उसका एक अवसर व्यर्थ चला गया ।

दूसरी बात वह कूदा तो सही किंतु वह इतना भी नहीं कूद पाया था कि उसे प्रतिस्पर्धा में भाग लेने योग्य घोषित किया जा सके । एक अव्यक्त निराशा तथा भय उसके अस्तित्व पर छा गया । वह तीसरी तथा अंतिम बार कूदने का प्रयास न करते हुए प्रतियोगिता से बाहर होने को उद्यत हो गया ।

जेसी की इस दुर्बलता को जर्मन खिलाड़ी लुट्ज लोंग भाँप गया । उसे साहस छोड़ते देखकर वह सब कुछ भूल गया कि हिटलर ने उसे क्या कहा-उसका वर्ण तथा रंग कैसा है व ओवेंस का कैसा । खिलाड़ी खेल के मैदान से भाग रहा था । उसने जेसी ओवेंस की पीठ पर हाथ रखा । काले हब्शी प्रतियोगी ने लुट्ज लोंग की गहरी नीली आँखों में झाँककर देखा । उनमें गहन आत्मीयता तथा प्रोत्साहन की अरुणिम रेखाएँ पड़ी थीं ।

लुट्ज लोंग ने कहा-"तुम इससे कई गुना अच्छा कूद लेते हो । यह योग्यता निर्धारक स्पर्धा तो तुम आसानी से जीत सकते हो ? क्या तुम्हें महामहिम हिटलर ने कुछ कहा है ? तुम किस बात पर नाराज होकर मैदान छोड़ रहे हो ? तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी अभी तो एक स्वर्ण असवर तुम्हारे हाथ है ।"

प्रोत्साहन भरे यह वचन सुनकर जेसी ओवेंस पर जो भय तथा अनुत्साह की घटाएं छा गई थीं वे पल भर में जाने कहाँ लुप्त हो गईं । उत्साह का प्रकाश उसके रग-रग में भर उठा वह तीसरी बार कूदा । इस प्रयास में वह योग्यता निर्धारक रेखा से तीस सेंटीमीटर अधिक कूद गया था ।

उसी समय से वे दोनों गहरे दोस्त बन गए । लुट्ज लोंग के साथ उसकी शामें बीतने लगीं । लुट्ज के निश्छल व्यवहार से उसे बड़ा बल मिला, हीनता के संस्कार धुल गए ।

वास्तविक प्रतियोगिता में ओवेंस तथा लोंग का कड़ा मुकाबला हुआ । प्रोत्साहन पाकर ओवेंस का आत्मविश्वास लौट आया था । उसने लुट्ज लोंग को हरा दिया ।

अपने प्रतियोगी को एक काले व्यक्ति से पराजित होते देखकर हिटलर क्रोध से पागल हो गया । उस समय भी लुट्ज लोंग ने ओवेंस का हाथ पकड़ कर ऊपर किया तथा अपार जन समूह ने उसकी हर्ष भरी आवाज सुनी- "जे.....सी.....ओ.....वें.....स" ।

ओवेंस जो अपने लुप्त होते आत्मविश्वास के कारण प्रतियोगी स्तर को भी नहीं छू पा रहा था वही विजय श्री वरण करने में तथा लुट्ज लोंग को हराने में सफल हो गया । यह प्रोत्साहन का ही परिणाम था ।

हिंदू समाज की संकीर्णता का ऐसा भयावह दुष्परिणाम

सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध । पुरी निवासी ब्राह्मण युवक कालाचाँद अपने मित्रों सहित देशदर्शन के उद्देश्य से बंगाल आया । कालाचाँद उसका नाम था किंतु रूप बिल्कुल नाम के विपरीत । एकदम गौर वर्ण, सुडौल शरीर ।

वह जितना सुंदर था बाँसुरी वादन में उतना ही निपुण था । बंगाल के तत्कालीन नवाब की कन्या दुलिया उसकी बाँसुरी की सुरीली स्वर लहरियों को

सुनकर उसे अपना दिल दे बैठी । प्रेम न जाति देखता है, न धर्म । कालाचाँद के प्रेम में वह इतनी खो गई कि एक दिन लाचार होकर उसे अपनी मनोकामना अपनी माता से कहनी पड़ी ।

माँ को उसकी बात पर बहुत आश्चर्य हुआ । उसने दुलिया को बहुत समझाया । किंतु वह नहीं मानी । यह बात एक दिन नवाब तक पहुँची । नवाब ने दुलिया को समझाने का पूरा प्रयास किया । किंतु उसने अपने पिता को स्पष्ट कह दिया कि यदि वे कालाचाँद से उसका विवाह नहीं करेंगे तो वह विषपान कर आत्महत्या कर लेगी । अपनी संतान की आत्महत्या कौन मौल ले सकता है । उसे कन्या का हठ पूरा करना ही पड़ा ।

नवाब ने कालाचाँद को अपने महल में बुलाया और अपनी कन्या से शादी करने का प्रस्ताव उसके सामने रखा । धन, वैभव व राज-पद के कई प्रकार के प्रलोभन उसे दिए किंतु उस पर इनका प्रभाव नहीं ।

नवाब के आदेश पर कालाचाँद दूसरी बार बंदी बना कर लाया गया और उसे दुलिया के साथ एक ही कक्ष में रखा गया । नवाब की राज्य शक्ति और दुलिया का रूपाकर्षण भी उसे अपने निश्चय से डिगा न सका । दुलिया किसी भी प्रकार उसे आकृष्ट न कर सकी । प्रेम में निराश हो उसने कालाचाँद से कहा-"यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करते तो मैं प्राण दे दूँगी ।"

कालाचाँद धर्म संकट में पड़ गया । मनुष्य आखिर मनुष्य ही होता है पत्थर नहीं । उसने दुलिया से विवाह की सम्मति दे दी । किंतु इस शर्त पर कि विवाहोपरांत दुलिया को माँ के पास गाँव ले जायगा और उसे धर्म परिवर्तन भी करना पड़ेगा । दुलिया तथा उसके माता-पिता ने यह स्वीकार कर लिया । उसे यह विश्वास था कि धर्म परिवर्तन के बाद उसे अपनी जाति वाले अपने में मिला लेंगे और दुलिया की प्राण रक्षा भी हो जाएगी ।

हुआ बिल्कुल उसकी आशा के विपरीत ही । माँ ने तो म्लेच्छ कन्या दुलिया को पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कर लिया । किंतु वर्णाभिमानी परंपरावादी ब्राह्मणों ने किसी भी मूल्य पर कालाचाँद को जाति में लेना स्वीकार नहीं किया । उसने बहुत आग्रह किया किंतु जाति वालों ने एक न सुनी । बह जगन्नाथ जी की शरण में पुरी गया तो वहाँ भी अपमानित किया गया । वह बहिष्कृत ही रहा ।

सहन शक्ति की भी एक सीमा होती है । कालाचाँद की सहनशक्ति का बाँध टूट गया था । वह दुलिया को लेकर पुनः बंगाल नवाब के पास चला गया । उसने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया । अपने अपमान का बदला उसने हिंदुओं के कितने ही मंदिरों व देव-मूर्तियों को तोड़कर लिया । उसे इतिहास में काला पहाड़ के नाम से जाना जाता है । उसके तोड़े हुए मंदिरों में कोणार्क का प्रसिद्ध मंदिर भी एक है । उड़ीसा की समस्त खंडित मूर्तियाँ उसी के प्रतिशोध की निशानी है ।

जन्म से न कोई हिंदू होता है, न मुसलमान, न ब्राह्मण, न भंगी । ईश्वर ने अपने पुत्रों के साथ ऐसा भेद नहीं बरता है । मुनष्यकृत इन भेदों के कारण किसी को कालाचाँद की तरह अपमानित होना पड़े तो उसकी प्रतिक्रिया और क्या होगी ? ऐसी संकीर्ण हृदयता जिस समाज में हो वह समाज विशृंखलित और विघटित ही होता चला जाए तो आश्चर्य क्या ?

अंधे तैराकों ने इंगलिश चैनल पार की

फ्लेक स्टोन से प्रसारित समाचार-"४ अंधे तैराकों की रिले टीम इंगलिश चैनल पार करेगी"-पढ़कर एक बार तो लोग आश्चर्य से डूब गए पर जब उन्होंने दूसरी तरफ से विचार करना प्रारंभ किया तो यही आश्चर्य आत्मविश्वास में बदल गया । उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य की क्षमता का वस्तुतः पाराबार नहीं । यदि कुछ लोग इतने पराक्रमी हो सकते हैं कि वे पृथ्वी से चलकर चंद्रमा तक पहुँच जायें तो सामान्य व्यक्ति में इतना साहस होना ही चाहिए कि वह धरती पर रहकर अपने आपको अभावग्रस्त या भाग्यहीन न अनुभव करे । दैवी विपन्नतायें भी साहसी मनुष्य के मार्ग में बाधायें उत्पन्न कर सकती हें । जब यह बात लोगों के अनुभव में आई तो आश्चर्यजनक कोई बात न रही ।

तो भी यह एक कौतूहल तो था ही । सिद्धांत की बात और है, व्यवहारिकता और व्यवहार में देखें तो कच्चे मनुष्यों की रेजगारी कम न मिलेगी । ऐसे मनुष्य जो शरीर से खूब हृष्ट-पुष्ट तंदुरुस्त होंगे, शिक्षित भी होंगे वे भी भाग्य और पराश्रय के सहारे दैन्य स्थिति में पड़े मिलेंगे । हमारी युवा पीढ़ी के पास सब कुछ है पर साहस

और मनोबल का अभाव ही उसे आगे नहीं बढ़ने दे रहा । नौकरी के लिए रोने वाला युवक यदि मिट्टी ले जाकर शहर में बेचने लग जाता तो ही ४०) रु० की मिट्टी बेच आता । एक ओर यह अभाव देखकर ही लोगों के मन में अंधों का साहस देखने की बेचैनी जागृत हुई ।

हजारों व्यक्तियों की भीड़ प्रतियोगिता का प्रारंभ देखने को एकत्रित हुई । 'पॉप संगीत' के सहारे चैनल पार करने का प्रबंध किया गया था । टीम में ४ अंधे थे जिनमें तीन तो सगे भाई थे । तीनों बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे थे । उनके मुख पर दैन्यता या निराशा जैसी कोई बात न थी । "दया का पात्र बनने की अपेक्षा स्वाभिमानी होना पसंद है हमें"-यह भाव टपक रहा था उनके चेहरों से ।

रक्षक नौका से एक दो तीन के उच्चारण के साथ जैसे ही बंदूक दागी गई चारों पुरुषार्थी पानी में कूद गए उनके लिए तो तैराकी और भी कठिन थी । आँखों से दिखाई न देने के कारण ठीक दिशा में बढ़ना ही मुश्किल होता फिर समुद्री जानवरों का खतरा भी क्या कम था तो भी पुरुषार्थ तो पुरुषार्थ ही है । मनोबल कब निराश हुआ है सफलता के लिए । रक्षक नौका में एक ट्रांजिस्टर रेडियो लगा दिया गया था । वही संगीत ध्वनि प्रदान करता रहा और उस ध्वनि की आहट में चारों साहसी शूरवीर आगे बढ़ते गए ।

कैप ग्रिस नेज फ्रांस से तैराकी प्रारंभ हुई थी । फ्लेक स्टोन वहाँ से ३७ किलोमीटर अर्थात् २३.२ मील पड़ता है । यह दूरी उन्होंने १४ घंटे ३८ मिनट में तैरकर पार कर ली और इस तरह चैनल पार करने वाले थोड़े से साहसी व्यक्तियों की श्रेणी में उन्होंने अपना भी नाम अंकित करा लिया ।

फ्लेक स्टोन में इन चारों ब्रिटिश तैराकों का स्वागत करते हुए वहां के मेयर ने कहा-"इस प्रतियोगिता का महत्व इसलिए और भी अधिक हो गया है क्योंकि यहाँ विपरीत परिस्थितियों में उत्कट साहस का परिचय दिया गया है । हमें सबक लेना चाहिए कि यदि मनुष्य के पास हिम्मत हो तो वह कैसी भी परिस्थितियों में होकर भी सफलता की चरम सीमायें पार कर सकता है । मनुष्य परमुखापेक्षी न हो उसके लिए यह एक आदर्श उदाहरण है ।

सही अर्थों में ब्राह्मण जीवन

"शास्त्री जी"-काशी के शासकीय संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य जर्मनी के जार्ज फ्रेडरिक विलियम थिवो ने पंडित गंगाधर शास्त्री को संबोधित करते हुए कहा-"मैं आपकी योग्यता और प्रतिभा का कायल हूँ । क्या ही अच्छा होता यदि आप यहाँ के दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक पद को सुशोभित करते । मुझे इससे बड़ी प्रसन्नता होगी ।"

पं० गंगाधर शास्त्री ने उनके प्रस्ताव को स्वीकारते हुए कहा-"यदि आपकी यही इच्छा है तो ऐसा ही होगा ।"

चालीस रुपये प्रतिमाह के वेतन पर वे उस पर नियुक्त हो गए । इसके कुछ ही दिनों बाद कलकत्ता के सरकारी संस्कृत कालेज से भी उनके पास एक प्रस्ताव इस आशय का आया कि वे वहाँ के संस्कृत प्राध्यापक पद को स्वीकार कर लें । इसके लिए प्रति माह पाँच सौ रुपये वेतन देने का आश्वासन दिया गया था । शास्त्री जी ने प्रस्ताव को अस्वीकारते हुए वहाँ के प्राचार्य महोदय को पत्र लिखा-"क्षमा करें, मैं आपके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता, विवशता है ।"

जब इस बात का पता फ्रेडरिक थिवो को चला, तो बड़े आश्चर्य में पड़कर उनने गंगाधर शास्त्री से प्रश्न किया-"पंडित जी ! जब आपको वहाँ पाँव सौ रुपये मिल रहे थे, तो आपने उसे ठुकरा क्यों दिया ?"

"इसके दो कारण हैं"-गंगाधर शास्त्री ने उत्तर दिया-"प्रथम तो लोभ में पड़कर मैं अपने वचन को तोड़ नहीं सकता था, यह मेरी मर्यादा के विपरीत था, क्योंकि प्रस्ताव मुझे यहाँ की नियुक्ति के बाद मिला था और द्वितीय जब चालीस रुपये में ही अपना निर्वाह आसानी से चल जाता है, तो पाँच सौ रुपये की क्या आवश्यकता ! क्या आपको नहीं मालूम अनावश्यक आय ही दुर्व्यसनों की जड़ है ।"

"वह तो ठीक है, पर घर में पत्नी हैं, बच्चे हैं, आखिर उनकी भी तो कुछ इच्छा-आकांक्षा होगी ? आप अपनी इच्छा उन पर क्यों थोपना चाहते हैं ? उन्हें भी तो निर्णय लेने का अधिकार है । यह क्या व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन नहीं हुआ ?"-प्रधानाचार्य ने सहज जिज्ञासा प्रकट की ।

"नहीं !"-दो टूक उत्तर मिला।

"पर क्यों ?"

"क्योंकि हम दोनों एक ही टकसाल में ढले हैं। मेरी तरह किफायतसारी की मेरी पत्नी भी कट्टर समर्थक है। हम दोनों का इस संदर्भ में एक ही विचार है कि मितव्ययतापूर्वक जीवन जिया जाय और उसके बाद जो कुछ बचे उसे समाज सेवा में लगाया जाय एवं पुण्य-परमार्थ कमाया जाय। शेष धन पर अधिकार भी तो समाज का ही बनता है। क्या आपको वह उपनिषद् वाक्य याद नहीं-"शत हस्तं समाहरं सहस्त्र हस्तं संकिर" अर्थात् सौ हाथों से इकट्ठा करो और हजार हाथों से बाँट दो और गीता का वह श्लोक-"संतुष्टो येन केचचित्"-अर्थात् जो कुछ मिल जाय, उसी में संतोषपूर्वक रहा जाय। रही बात बच्चों की, सो भगवान ने उन्हें दो हाथ-पैर दिये हैं। बड़े होने पर हमारी ही तरह किसी न किसी तरह पेट भर ही लेंगे। व्यक्ति भूखा उठता अवश्य है, पर सोता कभी भूखा नहीं है।"

"आपके विचार तो बड़े उदात्त हैं शास्त्री जी, पर जब समाज में दृष्टि डालता हूँ तो लाखों में एक ही आपके जैसे लोग नजर आते हैं। अधिकांश तो धन के पीछे मृगतृष्णा की तरह भागते और पानी की तरह बहाने में अपना बड़प्पन समझते हैं। सादगी और सरलता तो जैसे स्वाति बूँद की तरह दुर्लभ ही हो गयी है, मगर एक बात में अवश्य ही कहूँगा पंडित जी कि सादगी में रहने वाले आप जैसे लोग ही महान हुए हैं, हुए थे और भविष्य में रहेंगे भी। जहाँ धन संग्रह होता है, बुराइयाँ और कुटेव वहीं पनपती है, पर आज इस देश का दुर्भाग्य तो देखिये कि जहाँ कभी फक्कड़पन को आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाता था और इसी की मजबूत नींव पर अध्यात्म पल्लवित-पुष्पित हुआ था, उसी को अब हेय दृष्टि से देखा जाता है, गरीबी का संबोधन दिया जाता है। आप जैसी सादगी के अनुकरणीय प्रतिमान स्थापित करने पड़ेंगे, तभी एक बार फिर से देश गर्वोन्नति से विश्व में सिर ऊँचा उठा सकेगा।"

कितना सही कथन था उस विदेशी का, जो आज भी अपनी जगह अकाट्य है।

卐卐卐 卐卐卐 卐卐卐 卐卐卐

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा